मूषक-वैदुष्यम्

संस्कृत-सेवा-संस्थान
• कृष्णेन्द्रराज भवन
११२, खुर्रमपुर, गोरखपुर

श्लिष्टत्वं पदलालित्यं
संस्कृते यत्सुरक्षितम् ।
भाषान्तरैस्तदप्राप्यं
तस्मात्पठतु संस्कृतम् ॥

- 00a.tif

मूषक-वैदुष्यम्

राजकिशोर मणि त्रिपाठी



संस्कृत-सेवा-संस्थान
कृष्णेन्द्रराज भवन,
१३३, खुर्रमपुर, गोरखपुर

प्रकाशक
संस्कृत-सेवा-संस्थान
कृष्णेन्द्रराज भवन
१३३, खुर्रमपुर, गोरखपुर

●

●

प्रथम संस्करण : १९८४
मूल्य : तीन रुपया पचास पैसा मात्र

●

प्राप्ति-स्थान—
(१) मोतीलाल, बनारसीदास
चौक, वाराणसी
(२) विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी

●

मुद्रक
एजूकेशनल प्रिंटर्स,
गोला दीनानाथ, वाराणसी

- 02.tif

समर्पण

विश्व-परिक्रमण-प्रतियोगिता में नव-व्याख्यात व्यवस्था
के द्वारा गणपति पद न पानेवाले
देवसेनापति के श्रीचरणों में
सप्रश्रय समर्पित

राजकिशोर मणि त्रिपाठी



पात्र परिचय

मूषकराज:	प्रहसन का नेता
पुंध्वज:	वैयक्तिक सहायक
चमचा:	मूषकराज को मित्र बताने वाला
उत्कटगन्ध:	सम्पत्ति सहायक
तीक्ष्णदन्त:	परिषत् सहायक
कृषक:	
अधिकारी	
आरक्षी	
नेता	
पत्रकार:	
न्यायाधिकारी	
डाक्टर:	
अभियन्ता	
अध्यापक: (शिक्षक:)	
दौवारिक:	द्वारपाल (आवास)
कोशगुप्त:	द्वारपाल (परिषत्)
ललज्जिह्व:	विदेशस्थ प्रतिनिधि
तपस्वी	जनता का प्रतीक
किशोर:	तपस्वी का अनुयायी
सूत्रधार:	
पारिपार्श्वक:	
प्रतिनिधय:	४ या ५
गायक:	
वादका:	४ या ५

श्री:

प्राक्कथन

विभाकरं गणेशञ्च गौरीं मृत्युञ्जयं तथा ।
नारायणं हनूमन्तं श्रेयसे प्रणमाम्यहम् ॥

इधर वृत्तपत्रों में पंजाब समस्या, चर्बीकाण्ड, लंका में तमिलजनों पर प्रहार की विशेष चर्चा देखकर मन में यह विचार उठा कि यह सब क्यों हो रहा है ? निरन्तर भ्रष्टाचार की निन्दा हो रही है पर वह बढ़ता ही जा रहा है । आश्चर्य तो तब होता है जब सेना के प्रमुख अधिकारी भी विदेशी राज्यों को गुप्त सूचना देते रहते हों तथा मन्त्रियों पर भ्रष्टाचार के आरोप न्यायालय में सिद्ध किये जा रहे हों ।

ऐसे समय में मन में यह धारणा बनी कि इसका मूलकारण है भारतीय संस्कृति के प्रति अश्रद्धा, राष्ट्र के प्रति प्रच्छन्न विद्रोह, व्यक्तिगत धन और पद की लिप्सा, जलने पर भी ऐंठन न छूटने वाला दम्भ, शासकों की ढुलमुल नीति तथा उनका चापलूसों से घिरा रहना । राजनीति से विरत देश के प्रबुद्ध नागरिक प्राय: ऐसे अवसर पर चुप हैं । इसका कारण उनका दिग्भ्रान्त होना तो नहीं कहा जा सकता है । हाँ, यह अवश्य है कि इस परिस्थिति में वे यह सोचते हैं कि उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज होगी ।

केवल इसी अव्यवस्था पर प्रहार करने की दृष्टि से इस प्रहसन की रचना हुई है । मूषकवैदुष्यम् की कल्पना के पीछे भाव यह है कि मूषकों का पाण्डित्य ही ऐसा होता है कि वे दूसरों की वस्तु को आत्मगत करने में तथा उसे विकृत एवं विनष्ट करने में निपुणता दिखाते हैं । यह स्वार्थी प्रवृत्ति का द्योतन है । यह स्वार्थ ही वस्तु को विकृत रूप देता है ।

इस पुस्तक में पात्रों के रूप में समाज के प्रबुद्ध वर्ग की निन्दा जैसी कुछ

वस्तु दिखाई देगी। पर इसके पीछे उद्देश्य केवल विचारगत त्रुटियों का दिखाना है, न कि, किसी व्यक्ति का उपहास करना। अग्नि से घर जल जाता है पर वही अग्नि भोजन बनाने का मूलसाधन भी है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

प्रहसन केवल हास्य की अभिव्यक्ति के लिए होता है। उसमें अन्तर्निहित तथ्य वास्तविक होते हुये भी इसलिए उद्वेजक नहीं होते हैं क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य मनोरञ्जन का उत्पादन मात्र होता है। प्रहसन के लिए विदूषक की योजना की जाती है। पर इस प्रहसन में अधिकांश पात्र व्यवस्थित होते हुये भी विदूषक ही हैं। विकृत वेशभूषा, विकृत विचार तथा विकृत उच्चारण इसमें सहायक हैं।

संस्कृत को प्रायः गम्भीर विषयों के लिए ही उपयुक्त समझा जाता है। इस ग्रन्थ के प्रणयन में यह भी उद्देश्य है कि संस्कृत की क्षमता बहुमुखी है, इसकी परीक्षा लेना। इसमें कहाँ तक सफलता मिली है, यह पाठक ही जानें। संस्कृत को जो लोग आम फ़हम ज़बान बनाने की गुज़ारिश करते हैं, शायद उनको भी यह खुश कर सके। उच्चारण में सरलता की दृष्टि से इसमें सन्धि अत्यल्प की गई है।

अन्त में पुनः यह कहना आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि इस पुस्तक में किसी व्यक्ति पर आक्षेप नहीं है, वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पर अवश्य है। इतनी सफाई के बाद भी यदि किसी को यह न स्वीकृत हो तो भर्तृहरि के निम्नलिखित श्लोक के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

राजकिशोर मणि त्रिपाठी

कृष्णेन्द्रराजभवन, गोरखपुर
मकरसंक्रान्ति, २०४० वि०



श्रीगणेशाय नमः

मूषक-वैदुष्यम्

— o —

यत्पादरजः प्रणयान्मोदन्तेऽन्धकन्दरस्थाः खनकाः ।
सोऽवतु नित्यं श्रीमान् वो मूषकवाहनो देवः ॥ १ ॥

(नान्द्यन्ते प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः : मारिष ! अत्र विदुषां समवायः । कथमेकपदन्यूना नान्दी पुरस्कृता ?

पारिपार्श्वकः : आर्य ! ह्यः एव उक्तम्, कथं विस्मृतम् आर्येण, यत्— भगवान् मूषकवाहनो न्यूनतां परिहरति ।

सूत्रधारः : आः ! 'अन्यद् भुक्तम् अन्यद् वान्तम्' कथं करोषि । भगवान् मूषकवाहनो न्यूनतां परिहरति इति हेतोः नैते

जिसकी चरणधूलि में प्रेम रखने के कारण, अन्धकार युक्त बिलों में रहनेवाले मूषक प्रसन्न रहा करते हैं, वह श्रीयुक्त मूषकवाहन देव (गणेश जी) आप लोगों (दर्शकों) की नित्य रक्षा करें ।

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार आता है)

सूत्रधार : मारिष ! यहाँ विद्वानों का समुदाय है । एक पद से हीन नान्दी क्यों उपस्थित की गई ?

पारिपार्श्वक : आर्य ! कल ही कहा गया आप कैसे भूल गये ? यह कि— भगवान् मूषकवाहन त्रुटि को दूर करते हैं ।

सूत्रधार : आः ! 'खाया कुछ वमन किया कुछ' ऐसा क्यों करते हो । भगवान् मूषकवाहन त्रुटि का परिहार करते हैं, इसलिए उन्हीं

तद्वल्लब्धयशस्का विद्वांसस्त्वां मर्षयिष्यन्ति । एते तु अनालोच्या आलोचकप्रवराः, निरुपाधयोऽपि उपाधिधारिणः, मृदुभाषिणोऽपि कटुकारिणः, असूचीमुखा अपि सूचीनिर्मितिकुशलाः । हन्त, किमेते कथयिष्यन्ति ?

पारिपार्श्वकः : क्षम्यतां देव ! (किञ्चिद् विचिन्त्य) तर्हि, उपस्थाप्यम् एतेषां चेतश्चमत्काराय किञ्चिन्नवं प्रहसनम् ?

सूत्रधार : साधु वत्स ! । सुष्ठूक्तम् ।

अपगतकासो हासो भवति विलासोऽवनमितमुखलक्ष्म्याः ।
सर्वेषां प्रिय एष व्यपगमयति दुःखशकलानि ॥२॥

पारिपार्श्वकः : तर्हि, आर्य ! केन सभाजनीया एते, बहुशो धृतोपनेत्रा विद्वन्नेतारः ?

की रीति से यशस्वी बने ये विद्वान् तुम्हें क्षमा नहीं करेंगे । ये तो दूसरों की आलोचना में कुशल पर अपनी आलोचना न चाहने वाले होते हैं । ये उपाधि अर्थात् विवेचकत्व से शून्य होते भी उपाधिधारी होते हैं । मृदुभाषी होते हुए भी कटु करनेवाले होते हैं । यद्यपि ये सूचीमुख नहीं होते हैं तथापि सूची बनाने में कुशल होते हैं । दुःख है कि ये क्या कहेंगे ?

पारिपार्श्वक : देव ! क्षमा करें । (कुछ सोचकर) तो, इनके चित्त की प्रसन्नता के लिए कोई नया प्रहसन उपस्थित किया जाना चाहिये ?

सूत्रधार : साधु वत्स ! साधु । बहुत ठीक कहा ।

कास को दूर करनेवाला यह हास शिथिलमुखशोभा का विलास होता है । यह सभी को प्रिय है । (क्योंकि) यह दुःख के अंश को भी दूर भगाता है ।

पारिपार्श्वक : तो आर्य ! प्रायः चश्मा चढ़ाने वाले ये विद्वानों के अग्रणी किस प्रकार सम्मानित हो सकते हैं ?

सूत्रधारः : अये वत्स ! लुकाटहस्तस्य कबीरस्य, त्यक्तधनपुत्रस्त्रीकस्य मध्यममार्गानुयायिनः सिद्धार्थस्य, भिक्षुचक्रचक्रवर्तिनः आत्मन्येव रममाणस्य गोरक्षनाथस्य क्रीडाभूमौ क्रीडता, जमुईपण्डितवास्तव्येन पण्डितेन, अतएव मुहुर्मुहुः परिस्खलितेन, त्रिपाठिना राजकिशोरमणिना लिखितं नवं प्रहसनं, मूषकवैदुष्यं नाम, नाभिजानासि ?

पारिपाश्र्वकः : आर्य ! कथं नाभिजानामि ? यतस्तुण्डीं गृहीता ततो मतिर्भ्रष्टा । अन्यथा को न जानाति पण्डितमेनम्, ऋते तदुपकृतेभ्यः ।

सूत्रधारः : वत्स क उपकारः ? क उपकर्ता ? कश्चोपकृतः ? उपकारः शास्त्रनिष्ठगुणः । लोके नायं गुणः । पश्य लोकसिद्धान्तम् ।

सूत्रधार : अरे वत्स ! लुआठाधारी कबीर की, धन पुत्र स्त्री छोड़ने वाले मध्यममार्ग के अनुयायी सिद्धार्थ की तथा भिक्षुचक्र के चक्रवर्ती, अपने में ही रमनेवाले गोरखनाथ की क्रीडाभूमि में क्रीडा करनेवाले, जमुईपण्डित निवासी पण्डित, इसीलिए बारबार असफल, त्रिपाठी राजकिशोर मणि के द्वारा लिखित मूषकवैदुष्य नामक नये प्रहसन को नहीं जानते हो ?

पारिपाश्र्वक : आर्य क्यों नहीं जानता हूँ ? चूंकि कुंदरू लिया, इसलिए बुद्धि चली गई । नहीं तो, उनके द्वारा उपकृत लोगों को छोड़कर उन पण्डित को कौन नहीं जानता है ?

सूत्रधारः : वत्स उपकार क्या ? उपकार करनेवाला कौन ? उपकृत कौन ? उपकार तो शास्त्रलिखित गुण है । लोक में यह गुण नहीं है । लोक का सिद्धान्त देखो ।

उपकार करनेवाले के विषय में यदि लोक अपकारी न बने

अपि नाम जनो न स्यात् अपकर्तोपकारिणि ।
कथं भूत्वा नतग्रीवः शकटं यशसो बहेत् ॥ ३ ॥

अपि च—

यस्मिन् गेहे भवेद् वासः तत्रच्छिद्रं समाचरेत् ।
धनं तेन पथा नीत्वा मूषकवद् धनी भवेत् ॥ ४ ॥

(नेपथ्ये—अये क एष मय्युपस्थिते अनधिकारिणं मूषकरहस्यं व्याख्याति)

किं शब्द इव श्रूयते ?

पारिपार्श्वकः : (पार्श्वमालोक्य) आर्य ! सहानुचरो मूषकराज इत एवागच्छति । तदुपसर्पावः,

(इति निष्क्रान्तौ)

(ततः प्रविशति सहानुचरो मूषकराजः अये क एष··· ···इति वदन्)

तो गर्दन झुके रहने पर वह यश की गाड़ी को कैसे खींच सकता है ?

और भी—

जिस घर में निवास हो उसमें ही बिल बनाना चाहिये तथा उसी मार्ग से धन ले जाकर चूहे की तरह धनी बनना चाहिये।

(नेपथ्य में—अरे मेरे रहते यह कौन दूसरा अनधिकारी को मूषकरहस्य बता रहा है)

क्या, शब्द जैसा सुनाई पड़ रहा है ?

पारिपार्श्वक : (बगल में देखकर) आर्य ! अपने अनुचर के साथ मूषकराज इधर ही आ रहे हैं। तो हम लोग हट जायें।

(दोनों निकल गये)

(इसी समय अये क एष······इत्यादि कहते हुए मूषकराज का अपने अनुचर के साथ प्रवेश होता है)

मूषकराजः : पुंध्वज ! क एष मय्युपस्थिते अनधिकारिणं मूषकरहस्यं व्याख्याति ?

पुंध्वजः : (इतस्ततो विलोक्य) कश्चिन्नावलोक्यते देव ! मन्ये, भवन्तं दृष्ट्वा भवद्रीतिमनुसृत्य पलायितः ।

मूषकराजः : (भूमौ पादं प्रहरन्) आः पाप ! पलायनरीतिर्ममैव किम् ? पश्य—

मत्स्वामिनोऽपि जनको न पलायितः किम्
भस्मासुरं रहसि वीक्ष्य वरेण पुष्टम् ।
किं वाऽग्रणीर्निपुणधीर्यदुवंशजानां
न स्वीचकार विधिमेनमलं स कृष्णः ॥ ५ ॥

पुंध्वजः : (भीत इव प्रदर्शयन्) मर्षयतु देव ! नाहं पलायनविधिं निन्दामि । ममाभिनिवेशस्तु गुणवर्णनेऽस्ति ।

मूषकराज : पुंध्वज ! अरे ! मेरे रहते यह कौन दूसरा अनधिकारी को मूषकरहस्य बता रहा है ?

पुंध्वज : (इधर-उधर देखकर) कोई तो दिखाई नहीं दे रहा है देव ! ऐसा मानता हूँ कि आपको देखकर आपकी ही रीति का अनुसरण करता हुआ वह भाग गया ।

मूषकराज : (भूमि पर पैर पटकता हुआ) आः पाप ! पलायन की विधि क्या मेरी ही है ?

देखो—एकान्त में वरदान से पुष्ट भस्मासुर को देखकर क्या मेरे स्वामी (गणेश जी) के पिता भी नहीं भगे थे अथवा यदुवंशियों के अग्रणी निपुण बुद्धिवाले श्रीकृष्ण ने भी इस विधि को भलीभाँति नहीं अपनाया था ?

पुंध्वज : (डरा हुआ सा दिखाता हुआ) देव ! क्षमा करें । मैं पलायन के विधि की निन्दा नहीं कर रहा हूँ । मेरा अभिप्राय तो उसके गुणों के वर्णन में है ।

मूषकराजः : (उपविशन्) साधु वत्स साधु। पलायनं समुत्कर्षाय कल्पते, यदि पुनरागमनाय स्यात्।

नागानाक्रमते मृगेन्द्रतनयः संकोच्य नैजं वपुः
बाणश्चापि रिपून्प्रधर्षति दृढं गत्वा परस्तादलम्।
भास्वानेष न किं स्वरश्मिनिचयान् संकोच्य सायं पुनः
प्रातस्तान् विशदीकरोति तमसां राशिं जिहीर्षुभृं शम्।६।

पुंध्वजः : देव ! असद्वस्तुप्रतिपादने कोऽस्ति धन्यस्त्वदन्यः।

मूषकराजः : (क्रोधं नाटयन्) रे दुष्ट ! वाचाल ! किं कथयसि, 'असद्वस्तुप्रतिपादने' इति ? (किञ्चिद् विरम्य) अस्ति वस्तु, असच्च इति विरुद्धम्।

असन्न सत् सच्च कदाप्यसन्न
मतिं विरुद्धां च कथं युनक्षि।

मूषकराज : (बैठता हुआ) साधु वत्स ! साधु। पलायन समुन्नति के लिए होता है यदि वह पुनः आने के लिए हो।

सिंह का बच्चा अपने शरीर को सिकोड़ कर गजों पर आक्रमण करता है और बाण भी पर्याप्त पीछे हटकर शत्रुओं पर भलीभाँति मार करता है। यह सूर्य अन्धकार की राशि का नाश करनेवाला भी क्या सायङ्काल में अपने किरण समूह को सिमेट कर प्रातःकाल उसका पूर्ण विस्तार नहीं करता है।

पुंध्वज : देव ! असद् वस्तु के प्रतिपादन में आप सरीखा दूसरा कौन समर्थ है।

मूषकराज : (क्रोध का अभिनय करता हुआ) अरे दुष्ट ! बकवादी ! क्या कहता है—असद् वस्तु के प्रतिपादन में ? (थोड़ा रुककर) 'वस्तु है और नहीं है' यह तो विरोधी वचन है।

असत् सत् नहीं हो सकता और जो सत् है वह कभी भी असत् नहीं हो सकता है। तुम विरुद्ध बुद्धि को क्यों जोड़ रहे

त्वं पुंध्वजः सन् विजहासि सत्यं
सर्वं हि तत्सत् विषयीक्षते यत् ।। ७ ।।

पुंध्वज : (क्षमां प्रार्थयमान इव) क्षन्तव्योऽहं स्वामिन् । दुर्लालितोऽस्मीति किञ्चिद् वच्मि । अन्यथा, कोऽस्ति त्रिभुवने यो विवादे भवन्तं पराजयेत ।

मूषकराजः : (आश्वस्त इव) वत्स ! एकदा विडालसंत्रस्ता मूषका गोलपीठसभाम् आकारयन् ।

पुंध्वजः : ततः ।

मूषकराजः : तत्र दिग्दिगन्तात् नानास्वरूपा नानावेशधारिणो नानासिद्धान्ता मूषकाः समागताः ।

पुंध्वजः : ततस्ततः

हो । अरे तुम पुंध्वज होते हुये भी सत्य का परित्याग कर रहे हो । ध्यान रखो, इन्द्रियाँ जिसका अनुभव करती हैं वह सब सत्य है ।

पुंध्वज : (क्षमा माँगता हुआ सा) स्वामिन् ! क्षमा करें । आपके द्वारा प्यार से पाला गया हूँ इसलिए कुछ कह देता हूँ । नहीं तो, इस त्रिभुवन में कौन है जो आपको विवाद में पराजित कर दे ।

मूषकराज : (आश्वस्त होता हुआ सा) वत्स ! एक बार विडाल से डरे हुये मूषक गोलपीठ सभा (Roand Table Conference) बुलाये ।

पुंध्वज : तब

मूषकराज : वहाँ प्रत्येक दिशाओं से अनेक स्वरूप वाले अनेक वेशधारी अनेक विचार वाले मूषक आये ।

पुंध्वज : इसके बाद

मूषकराजः : बहुषु विचारणीयेषु एकः अयमपि विषयस्तत्रासीत् यत् जगति द्विप्रकारकः प्राणी दुर्बलो बलवान् च। बलवान् सदा दुर्बलं घातयति। न चास्त्युपायः प्रतीकारस्य। तत्र कथं वर्तितव्यम् इति।

पुंध्वजः : ततः

मूषकराजः : बलवद्भिः सन्धिर्विधातव्यः इति निर्णयः अव्यवहार्य आसीत्, विडालो यतः न सन्धिमाकांक्षति। विग्रहोऽपि नास्त्युपायः, यतः प्रतिपक्षी बलवानस्ति। एवम् अनेकोपायान् अपायांश्च विचिन्तयन्ती सा सभा, बङ्गादागतस्य आखुप्रवरस्य परामर्शे सन्तुष्टा जाता।

पुंध्वजः : क आसीत् परामर्शः ?

मूषकराजः : आयान्तं विडालं दृष्ट्वा पलायनं विधेयम्।

मूषकराज : वहाँ बहुत से विचारयोग्य विषयों में एक यह भी विषय था कि संसार में दो प्रकार के प्राणी होते हैं। एक दुर्बल तथा दूसरा बलवान्। बलवान् सदा दुर्बल का घात करता है और इसके प्रतिकार का उपाय भी नहीं है। ऐसे समय में कैसे रहना चाहिये।

पुंध्वज : तब

मूषकराज : बलवानों से सन्धि करनी चाहिये, यह निर्णय व्यवहार योग्य नहीं था। क्योंकि विडाल सन्धि नहीं चाहता है। बैर भी उपाय नहीं है। क्योंकि प्रतिपक्षी बलवान् है। इस प्रकार अनेक उपाय और अपायों को सोचती हुई वह सभा वङ्ग से आये एक मूषकोपाध्याय के परामर्श पर सन्तुष्ट हो गई।

पुंध्वज : क्या परामर्श था ?

मूषकराज : आते हुए विडाल को देखकर भाग जाना चाहिये।

पुंध्वजः : परं विडालः कदा आयास्यति इति कथं निश्चेयम् ?

मूषकराजः : अत्रापि सभया विचारः कृतः। तत्रासीन्निर्णयः यत्, विडालगले घण्टिका प्रतिष्ठापयितव्या। ततः तदागमन-वेलाज्ञानम् अनायासतो भविष्यति।

पुंध्वजः : परं क एनां प्रतिष्ठापयिष्यति ?

मूषकराजः : अरे क्षिप्रवादिन् ! अत्र निर्णयाभावे सभैव विसर्जिता।

पुंध्वजः : ततः।

मूषकराजः : तत्र सभायाम् अहमप्यासम्। आत्मजातेरिमां दुर्बलतां दृष्टवा दूयमानोऽहं, विश्वस्मिन् मूषकसाम्राज्यं स्थापयितुं तस्मिन्नेव क्षणे कृतनिश्चयः, अद्य यावत् प्रयतमानोऽस्मि।

पुंध्वजः : किं लब्धं साफल्यं देवेन ?

मूषकराजः : अरे दिवान्धिकाभ्रातः ! किं न पश्यसि ?

पुंध्वज : पर विडाल कब आयेगा, यह कैसे जानें।

मूषकराज : इस पर भी सभा ने विचार किया। वहाँ यह निर्णय हुआ कि विडाल के गले में घंटी बाँध दी जाय। इससे सरलतापूर्वक उसके आने के समय का ज्ञान हो जायेगा।

पुंध्वज : पर इसे कौन बाँधेगा ?

मूषकराज : अरे तुरत बोलने वाले ! इस विषय पर निर्णय के अभाव में सभा ही समाप्त हो गई।

पुंध्वज : तब।

मूषकराज : उस सभा में मैं भी था। अपनी जाति की इस दुर्बलता को देखकर दु:खी मैं उसी क्षण पूरे संसार में मूषकसाम्राज्य स्थापित करने का निश्चय करके आज तक प्रयत्नशील हूँ।

पुंध्वज : क्या देव ने सफलता पाई ?

मूषकराज : अरे दिवान्धिका (छछून्दर) के भाई ! क्या नहीं देख रहे

फ्रांसोऽस्तु रूसोऽस्तु भवेन्नु चीनः
जापान इंग्लैण्ड इराकदेशः।
स्यादीटली किंस्विदमेरिका वा
मान्योऽस्मि सर्वैरिह भारतेऽपि ॥ ८ ॥

पुंध्वजः : देव ! 'भारतेऽपि' इति कथयति। अत्र अपि पदस्य किं स्वारस्यम् ?

मूषकराजः : वत्स ! जयो हि द्विविधो भवति। देशजयः बुद्धिजयश्च। आस्थादृष्ट्या यस्मिन् देशे एक एव सिद्धान्तः, तत्र बुद्धिजयः सुकरः। यत्र तु समाजदृष्ट्या अनेके सिद्धान्ताः, तत्र देशजयः सुकरः।

पुंध्वज : अनेन किम् ?

मूषकराजः : वत्स ! भारततेरा देशाः आस्थादृष्ट्या एकतामापन्ना इव। तत्र कञ्चिद् वाग्जालिकं छद्मगृहीतमहात्मवेशं प्रेष्य

हो ? फ्रांस हो या रूस हो अथवा चीन हो, जापान इंगलैण्ड इराक अथवा इटली हो या अमेरिका ही हो सभी के द्वारा मैं मान्य हूँ। इस भारत में भी (मान्य हूँ)।

पुंध्वज : देव ! आप 'भारत में भी' यह कह रहे हैं। यहाँ इस 'भी' का क्या तात्पर्य है ?

मूषकराज : बच्चे ! जय दो प्रकार का होता है। देशजय और बुद्धिजय। आस्था की दृष्टि से जिस देश में एक ही सिद्धान्त होता है, वहाँ बुद्धिजय सरल होता है और जहाँ समाज की दृष्टि से अनेक सिद्धान्त होते हैं वहाँ देशजय सरल होता है।

पुंध्वज : इससे क्या हुआ ?

मूषकराज : वत्स ! भारत से अतिरिक्त देश आस्था की दृष्टि से एकता प्राप्त जैसे हैं। वहाँ किसी वाग्जाल फैलाने वाले छद्म से महात्मा का वेश धारण करनेवाले को भेजकर बुद्धिजय करने में समर्थ

बुद्धिजयं कर्तुं समर्थोऽस्मि । समाजदृष्ट्या बहुशो भिन्ने अस्मिन् भारते देशजयं कर्तुं कश्चित् अल्पसाधनोऽपि समर्थः । नात्र बुद्धिजयः सुकरः ।

पुंध्वजः : ततः ।

मूषकराजः : अत्र भारतेऽपि सर्वत्र सर्वेष्वेव सिद्धान्तेषु मूषकतत्त्वं विनिवेश्य बुद्धिजयः कृतः । अतो ब्रवीमि—भारतेऽपि ।

(ततः प्रविशति दौवारिकः)

दौवारिकः : (प्रणमन्) जयतु महाराजः । कश्चित् प्रजाजन इव द्वारि समुपस्थितः । स भवन्तं दिदृक्षते ।

मूषकराजः : (पुंध्वजं विलोकयन्) पुंध्वज ! किं केनापि अयं समयः प्राङ्निश्चितः साक्षात्काराय ?

पुंध्वजः : (पञ्जिकामवलोकयन्) न स्वामिन् ।

हूँ । समाज की दृष्टि से बहुधा भिन्न इस भारत में कोई अल्पसाधन व्यक्ति भी देशजय करने में समर्थ है । यहाँ बुद्धिजय करना आसान नहीं है ।

पुंध्वज : तब ।

मूषकराज : इस भारत में भी सर्वत्र सभी सिद्धान्तों में मूषकतत्त्व घुसाकर बुद्धिजय कर लिया है । इसलिए कहता हूँ—भारत में भी ।

(इसके बाद दौवारिक आता है)

दौवारिक : (प्रणाम करता हुआ) महाराज की जय हो । कोई प्रजाजन जैसा व्यक्ति द्वार पर आया है । वह आपको देखना चाहता है ।

मूषकराज : (पुंध्वज को देखता हुआ) पुंध्वज ! किसी ने भी क्या साक्षात्कार के लिए यह समय पहले से निश्चित किया है ?

पुंध्वज : (रजिस्टर देखता हुआ) नहीं स्वामी ।

मूषकराजः : दौवारिक ! समयनिश्चयाभावे न कोऽपि मां द्रष्टुं समर्थः ।

(भीतिं नाटयति. दौवारिके परावर्तिते)

पुंध्वज ! जानासि अस्य रहस्यम् ? 'यस्मिन् कस्मिन् एव क्षणे राजा प्रजाभिः आकारयितव्यः' इति भारतीये सिद्धान्ते सहसा प्रजाप्रवेशो निषिद्धः इति मूषकसिद्धान्तः प्रवेशितः । अनेन सद्यः प्रजाः स्वदुःखं न कथयिष्यन्ति । शनैः शनैः आपत्तिमपि विस्मरिष्यन्ति । एवम् शासक-चिन्ता स्वयमेव व्यपगता भविष्यति । शासनदृष्ट्या इदम् प्रथमं मूषकरहस्यम् ।

पुंध्वजः : अनेन तु शासनोद्देश्यं निष्फलं स्यात् । शासकैः शासित-चिन्ता कर्तव्यैव इति राजनीतिः । शासकाः करान् गृह्णन्ति ।

मूषकराज : दौवारिक ! समयनिश्चय के अभाव में कोई भी मुझसे भेंट नहीं कर सकता है ।

(भय का अभिनय करते हुये दौवारिक के चले जाने पर)

पुंध्वज ! इसका रहस्य जानते हो ? 'जिस किसी क्षण में प्रजा के द्वारा राजा बुलाये जा सकते हैं' इस भारतीय सिद्धान्त में 'सहसा प्रजा का प्रवेश निषिद्ध है' यह मूषक सिद्धान्त घुसाया गया है । इससे तुरन्त प्रजा अपना दुःख नहीं कह पायेगी । धीरे-धीरे आपत्ति भी भूल जायेगी । इस प्रकार शासक की चिन्ता अपने आप दूर हो जायेगी । शासन की दृष्टि से यह पहला मूषकरहस्य है ।

पुंध्वज : इससे तो शासन का उद्देश्य ही निष्फल हो सकता है । शासकों को शासित की चिन्ता करनी ही चाहिये । यह राजनीति है । शासक टैक्स लेते हैं ।

मूषकराजः : दौवारिक ! समयनिश्चयाभावे न कोऽपि मां द्रष्टुं समर्थः ।

(भीतिं नाटयति दौवारिके परावर्तिते)

पुंध्वज ! जानासि अस्य रहस्यम् ? 'यस्मिन् कस्मिन् एव क्षणे राजा प्रजाभिः आकारयितव्यः' इति भारतीये सिद्धान्ते सहसा प्रजाप्रवेशो निषिद्धः इति मूषकसिद्धान्तः प्रवेशितः । अनेन सद्यः प्रजाः स्वदुःखं न कथयिष्यन्ति । शनैः शनैः आपत्तिमपि विस्मरिष्यन्ति । एवम् शासक-चिन्ता स्वयमेव व्यपगता भविष्यति । शासनदृष्टया इदम् प्रथमं मूषकरहस्यम् ।

पुंध्वजः : अनेन तु शासनोद्देश्यं निष्फलं स्यात् । शासकैः शासित-चिन्ता कर्तव्यैव इति राजनीतिः । शासकाः करान् गृह्णन्ति ।

मूषकराज : दौवारिक ! समयनिश्चय के अभाव में कोई भी मुझसे भेंट नहीं कर सकता है ।

(भय का अभिनय करते हुये दौवारिक के चले जाने पर)

पुंध्वज ! इसका रहस्य जानते हो ? 'जिस किसी क्षण में प्रजा के द्वारा राजा बुलाये जा सकते हैं' इस भारतीय सिद्धान्त में 'सहसा प्रजा का प्रवेश निषिद्ध है' यह मूषक सिद्धान्त घुसाया गया है । इससे तुरन्त प्रजा अपना दुःख नहीं कह पायेगी । धीरे-धीरे आपत्ति भी भूल जायेगी । इस प्रकार शासक की चिन्ता अपने आप दूर हो जायेगी । शासन की दृष्टि से यह पहला मूषकरहस्य है ।

पुंध्वज : इससे तो शासन का उद्देश्य ही निष्फल हो सकता है । शासकों को शासित की चिन्ता करनी ही चाहिये । यह राजनीति है । शासक टैक्स लेते हैं ।

मूषकराजः : (क्रोधं नाटयन्) रे मूर्ख ! किं त्वं मे गुरुः ? किं माम् अधिक्षिपसि ? पश्य—

सूर्यः किं सरितां न कर्षति जलं दृष्ट्वाऽपि दीनां दशाम्
अग्निर्वा न करोति भस्म सकलं काष्ठं निजाधायकम् ।
नाचार्यैरपराधसीम्नि कथितो भूपैः कराणां ग्रहः
किं कश्चिन्मधुहारकोऽपि कुरुते चिन्तां मधूत्पत्तिजाम् ।९।

पुंध्वजः : मर्षयतु देव ! अल्पज्ञोऽस्मि ।

मूषकराजः : (विहसन्) वत्स ! बुद्धिमानसि । परं त्वं मूषकः, अहन्तु मूषकराजः ।

पुंध्वजः : अथ किम् ।

मूषकराजः : वत्स ! शृणु । मूषकसिद्धान्ते धृतं राष्ट्रम् अनेन इति व्युत्पत्त्या शासनाध्यक्षः धृतराष्ट्रपदेन उच्यते । सः

मूषकराज : (क्रोध दिखाता हुआ) अरे मूर्ख ! क्या तुम मेरे गुरु हो ? क्या मुझ पर आक्षेप करते हो ? देखो—

दीन दशा को देखकर भी नदियों का जल क्या सूर्य नहीं खींचता है अथवा अपने आधारभूत सम्पूर्ण काष्ठ को अग्नि भस्म नहीं करता है ? आचार्यों ने राजाओं के द्वारा करों का ग्रहण अपराध की सीमा में नहीं माना है । क्या कोई मधु निकालने वाला मधु की उत्पत्ति के विषय में चिंता भी करता है ?

पुंध्वज : देव ! क्षमा करें । अल्पज्ञ हूँ ।

मूषकराज : (हँसता हुआ) वत्स ! बुद्धिमान् हो । पर तुम मूषक हो और मैं मूषकराज ।

पुंध्वज : और क्या ।

मूषकराज : बच्चे ! सुनो । मूषकसिद्धान्त में 'जिसने राष्ट्र धारण किया' इस व्युत्पत्ति से शासन के अध्यक्ष को धृतराष्ट्र कहा जाता है ।

अकर्मण्य:, स्वार्थदृष्टया गृध्रनेत्रोऽपि सन् परार्थतः अन्धो भवति । अस्य शताधिका अविनीताः सहायका भवन्ति । विरोधः स्वाभाविकः इति हेतोः पञ्चषा एव विरोधिनो भवन्ति ।

पुंध्वजः : सम्प्रति धृतराष्ट्रशब्दस्तु न प्रयुज्यते ?

मूषकराजः : एवमेव । अधुना तु पत्यन्तः प्रयोगो भवति । यथा—राष्ट्रपतिः, सभापतिः कुलपतिश्च । अयमेव क्वचित् अध्यक्षपदेन, अन्यत्र मालिकपदेन, अपरत्र इन्चार्ज आदिशब्दैः व्यवह्रियते ।

पुंध्वजः : स्वामिन् ! अस्य किं प्रधानं कार्यं भवति ?

मूषकराजः : प्रिय वत्स ! अयं स्वशासितेषु वैमत्यम् उत्पाद्य विभिन्नेन नाम्ना तेषां धनग्रहणं श्रमग्रहणं वा करोति ।

वह अकर्मण्य होता है । अपने लाभ की दृष्टि से वह गृध्र के समान देखने वाला होता हुआ भी दूसरे के लाभ की दृष्टि से अन्धा होता है । इसके सैकड़ों दुष्ट सहायक होते हैं । विरोध भी स्वाभाविक है, इस कारण पाँच या छः विरोधी होते हैं ।

पुंध्वज : पर आजकल धृतराष्ट्र शब्द का प्रयोग नहीं हो रहा है ?

मूषकराज : ऐसा ही है । आजकल तो पति अन्त वाले शब्दों का प्रयोग हो रहा है । जैसे—राष्ट्रपति, सभापति और कुलपति । यह ही कहीं पर अध्यक्ष, कहीं मालिक, कहीं इंचार्ज आदि शब्दों से व्यवहृत हो रहा है ।

पुंध्वज : इसका प्रधान कार्य क्या होता है, स्वामी ?

मूषकराज : प्रिय वत्स ! यह अपने द्वारा शासितों में विरुद्धमति उत्पन्न करके भिन्न भिन्न प्रकार से उनके धन का ग्रहण अथवा श्रम का ग्रहण करता है ।

पुंध्वजः : देव ! शासिताः विरोधं कथं न कुर्वन्ति ?

मूषकराजः : साधु वत्स ! सुष्ठु पृष्टम् । तैः विरोधवारणार्थं चिन्तन पद्धतिः विकृता क्रियते । यथा सदाचारिणः कदाचारिणो वा शासकाः सेव्या एव, न तु विरोधार्हाः । स्वार्थसिद्ध्यर्थं तैर्नियमा अपि निर्मीयन्ते ।

पुंध्वजः : देव ! कथमेते शासिताः स्वीकुर्वन्ति ?

मूषकराजः : मस्तिष्कशोधनात् ते तथैव चिन्तयन्ति यथा शासको वाञ्छति । पश्य—

तूष्णीम्भूय न किं श्रयन्ति रजकान् भारेण नम्राः खराः
किं वा नैव समुद्वहन्ति शकटानेते क्षुधार्ता वृषाः ॥
हिन्दुस्त्री मनसाऽपि किं प्रकुरुते पत्युर्विरोधं क्वचित् ।
बद्धाः सन्ति य एकदाऽपि मनसा बद्धाश्च ते सर्वथा ।१०।

पुंध्वज : देव ! शासित लोग विरोध क्यों नहीं करते हैं ?

मूषकराज : बहुत ठीक बच्चे ! ठीक पूछा । विरोध निवारण के लिए वे लोग चिन्तन का मार्ग विकृत कर देते हैं । जैसे—'सदाचारी हो या कदाचारी शासक की सेवा होनी ही चाहिये । वे विरोध के योग्य नहीं हैं ।' अपने हित में वे शासक नियम भी बना डालते हैं ।

पुंध्वज : देव ! शासित उसे स्वीकार कैसे कर लेते हैं ।

मूषकराज : मस्तिष्कशोधन के द्वारा वे शासित वैसा ही सोचते हैं जैसा शासक चाहता है । देखो—

भार से दबे हुये गदहे क्या चुपचाप धोबी की सेवा नहीं करते हैं अथवा भूखे बैल गाड़ियों को नहीं खींचते हैं ? हिंदुओं की स्त्रियाँ क्या कभी मन से भी पति का विरोध कर पाती हैं ? मन से जो एक बार भी बँध जाते हैं वे सदा बँधे ही रहते हैं ।

पुंध्वजः : स्वामिन् ! न केवलं राजैव भवान्, मन्ये बहुज्ञोऽपि। अतः किमपि पिपृच्छिषामि।

मूषकराजः : पृच्छ वत्स !

पुंध्वजः : शासकेन प्रजाभिः कथं व्यवहर्त्तव्यम् ?

मूषकराजः : प्रकृतिं परीक्ष्य।

पुंध्वजः : का प्रकृतिः ?

मूषकराजः : विकृतिहेतुः।

पुंध्वजः : कथमिव ?

मूषकराजः : शृणु। सांख्यनये क्षितिजल - समीर - पावक - गगनानि विकृतिरेव, न प्रकृतिः। मूषकनीतौ विकृतेरेव हेतुत्वात् व्यवहारबाहुल्येन एतद्विकृतिनिर्मिताः गो-गर्दभ-श्वान-वृक-मूषकप्रकृतिकाः प्रजाः प्रजायन्ते। ता विज्ञाय ताभिस्तथा व्यवहर्त्तव्यम्।

पुंध्वज : स्वामिन् ! आप केवल राजा ही नहीं हैं, मानता हूँ आप बहुत जानने वाले भी हैं। इसलिए कुछ पूछना चाहता हूँ।

मूषकराज : पूछो वत्स !

पुंध्वज : शासकों को प्रजा के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिये ?

मूषकराज : प्रकृति की परीक्षा करके।

पुंध्वज : प्रकृति किसे कहते हैं ?

मूषकराज : विकृति जिसका कारण है।

पुंध्वज : कैसे ?

मूषकराज : सुनो। सांख्यनय में पृथ्वी जल वायु अग्नि और आकाश विकृति ही हैं। ये प्रकृति नहीं है। मूषकनीति में विकृति को ही कारण मानने के कारण इन विकृतियों से निर्मित गौ-गदहा-कुत्ता-भेड़िया तथा चूहा प्रकृति वाली प्रजा उत्पन्न होती है। उन्हें जानकर उनसे वैसा ही व्यवहार करना चाहिये।

पुंध्वजः : किमासु शासकेन समतया व्यवहर्त्तव्यम् ?

मूषकराजः : (परिहसन्) न वत्स ! शासकाः श्वानप्रियाः । गोगर्दभाभ्याम् नापत्तिः । वृकैः सावधानतया भवितव्यम् । मूषकास्तु सजातीया एव ।

पुंध्वजः : श्वानोऽपि मूषकविरोधी एव देव !

मूषकराजः : (शिरश्चालयन्) परिणामे एवं भवति। परन्तु परिणामं कः प्रतीक्षेत । वयं परिणामं न पश्यामः ।

(ततः प्रविशति दौवारिकः)

दौवारिकः : जयतु महाराजः । धृतसद्योधौतवस्त्रः सोपनेत्रः महाराज्ञ्या स्थापितभ्रातृजायासम्बन्धः नाम्ना भवन्तं स्मरन् कश्चिद् विचित्रो जनो द्वारि समुपस्थितः । तत्र देवः प्रमाणम् ।

मूषकराजः : त्वरितं प्रवेशय ।

पुंध्वज : क्या इनमें शासक को बराबरी का व्यवहार करना चाहिये ।

मूषकराज : (हँसता हुआ) नहीं, वत्स ! शासक कुत्तों के प्रेमी होते हैं । गौ और गदहों से कोई आपत्ति नहीं है । भेड़ियों से सावधान रहना चाहिये । चूहे तो अपनी ही जाति के हैं ।

पुंध्वज : देव ! कुत्ता भी मूषक का विरोधी ही होता है ।

मूषकराज : (शिर हिलाता हुआ) परिणाम में ऐसा होता है । परन्तु कौन परिणाम की प्रतीक्षा करे । हम लोग परिणाम नहीं देखते हैं ।

(दौवारिक का प्रवेश होता है)

दौवारिक : महाराज की जय हो । तुरत धुला हुआ वस्त्र पहने, चश्मा चढ़ाये, महारानी के साथ भाभी का सम्बन्ध बताते हुये, आपका नाम लेकर आपको स्मरण करते हुये कोई विचित्र व्यक्ति बाहर आये हुये हैं । इस विषय में आपकी जैसी आज्ञा ।

मूषकराज : शीघ्र भेजो।

(दौवारिकः प्रतिगच्छति)

पुंध्वजः : नायं समयः केनचिदपि साक्षात्कर्तुम् देव !

मूषकराजः : मुखं पिधेहि। मूर्खोऽसि। न जानासि, त्यक्तस्ववृत्तिः श्ववृत्तिरयं चमचा आगच्छति।

पुंध्वजः : चमचा इति ?

मूषकराजः : आम्। चरित्रहीनतायाः मत्सरतायाः चाटुकारितायाश्च आद्याक्षराणि संगृह्य 'चमचा' शब्दो विनिर्मित इति।

पुंध्वजः : तेन किम् ?

मूषकराजः : दत्तकार्यनिर्वहणक्षमजनवत् अस्य प्रवेशो न निषिद्धः। विटचेटसहायाः राजानो भवन्ति।

(ततः प्रविशति मन्दं मन्दं विहसन् चमचाः)

(दौवारिक चला जाता है)

पुंध्वज : देव ! किसी से मिलने का समय यह नहीं है।

मूषकराज : मुँह बन्द करो। मूर्ख हो। नहीं जानते हो, अपनी वृत्ति का परित्याग करके कुत्ते की वृत्ति को अपनाने वाला 'चमचा' आ रहा है।

पुंध्वज : चमचा क्या ?

मूषकराज : हाँ। चरित्रहीनता मत्सरता तथा चाटुकारिता के पहले वाले अक्षरों को जोड़कर यह चमचा शब्द बना है।

पुंध्वज : इससे क्या हुआ ?

मूषकराज : दिये हुये कार्य को सम्पादन करने में समर्थ व्यक्ति की भाँति इसका प्रवेश निषिद्ध नहीं होता है। राजा लोगों के पास विट चेट रहते ही हैं।

(इसके बाद मुसकराता हुआ चमचा आता है)

मूषकराजः : आः ! चिराद् दृष्टोऽसि विश्वकद्रो ! आगच्छ आगच्छ, अत्र उपविश । अप्यनामयं सर्वत्र ?

विश्वकद्रुः : (चू चू चू इति वदन्, दक्षिणपार्श्वे समुपविशन्, मूषकराजपृष्ठं वामहस्तेन स्पृशन्, आत्मानं श्रमश्रान्तमिव प्रदर्शयन्) उन्दुरुशिरोमणे ! किं कुशलम् । अधोगन्तैवाऽसि । स्ववृत्तिं परित्यज्य किमाप्नोमि ?

मूषकराजः : (पुंध्वजं पश्यन्) कुत्र मोदकाः ?

पुंध्वजः : (पार्श्वस्थमोदकपात्रमानयन्) एते भगवन् ।

मूषकराजः : पुंध्वज ! अचिरादेव करिष्यमाण-प्रतिनिधि-सम्मेलन-व्यवस्था जाता ?

पुंध्वजः : ननु पश्यामि ।

(निष्क्रान्तः)

विश्वकद्रुः : (ही ही ही ही इति कुर्वन्) कृतं निर्मक्षिकम् ।

मूषकराज : आः विश्वकद्रु ! बहुत दिनों पर दिखाई पड़े । आवो आवो, यहाँ बैठो । सर्वत्र कुशल तो है ।

विश्वकद्रु : (चू चू चू करता हुआ, दाहिने बगल बैठता हुआ, मूषकराज के पीठ को बायें हाथ से छूता हुआ, अपने को थका हुआ सा दिखाता हुआ) मूषकराज ! क्या कुशल है । तुम अधोगन्ता ही हो । अपनी वृत्ति का परित्याग करके क्या पा रहा हूँ ?

मूषकराज : (पुंध्वज को देखता हुआ) लड्डू कहाँ हैं ?

पुंध्वज : (पास में रखे लड्डू के बर्तन को लाता हुआ) ये हैं श्रीमन् ।

मूषकराज : पुंध्वज ! अभी अभी होने वाली प्रतिनिधि सम्मेलन की व्यवस्था हो चुकी है ?

पुंध्वज : अभी देखता हूँ ।

(चला गया)

विश्वकद्रु : (ही ही ही ही करता हुआ) एकदम एकान्त कर दिया ।

मूषकराजः : अथ किम् ।

विश्वकद्रुः : (मोदकान् भक्षयन्) अद्य तुष्टिर्जाता । येन रोगस्तेनैव शान्तिः । त्वत्सदृशा उदरे कूर्दमाना आसन् । त्वद्दर्शनेन रोगमुक्तोऽस्मि ।

मूषकराजः : न्यस्तकार्ये किं कृतम् ?

विश्वकद्रु : (अपहसन्) किं न कृतम् ? (अक्षिणी निकोच्य) पौरुषं विस्मृत्य शासनमुखापेक्षिणो जानपदाः जाताः ।

मूषकराजः : साधु ।

अजगर इव भाग्याद् भोजने बद्धनिष्ठः,
स्फुटमपि निजलाभं वीक्षितुं वासरान्धः ।
शुनक इव निदेशं पालयन् शासकीयं
यदि भवति जनश्चेत् सैव वृद्धिर्हि शास्तुः ॥११॥

अपरं किं कृतम् ?

मूषकराज : और क्या ।

विश्वकद्रु : (मोदक खाता हुआ) आज तृप्ति हुई । जिससे रोग, उसी से शान्ति । तुम्हारे सरीखे पेट में कूद रहे थे । तुम्हारे दर्शन से रोग मुक्त हो गया ।

मूषकराज : बताये गये काम में क्या किया ?

विश्वकद्रु : (अट्टहास करता हुआ) क्या नहीं किया ? (आँखें दबाकर) पौरुष को भूलकर नागरिक शासन के मुख को देखने वाले हो गये हैं ।

मूषकराज : बहुत उत्तम ।

यदि जनता अजगर के समान भाग्य से भोजन के प्रति निष्ठावाली हो जाय, अपने स्फुट लाभ को देखने में उल्लू जैसी हो जाय तथा कुत्ते के समान शासन के आदेश को मानने वाली हो जाय तो यह ही शासक की उन्नति मानी जाती है ।

विश्वकद्रुः : चिरं वर्द्धस्व। कदाचारं गर्हयन्तोऽप्येते कदाचाररता एव प्रजाजनाः।

मूषकराजः : सुष्ठु सुष्ठु।

भवन्तु जैना यदि गोवसाप्रियाः,
तथैव बौद्धाश्च भवन्तु हिंसकाः।
सिखाः स्वदेशस्य विखण्डने रताः,
मन्ये जयोऽयं मम राज्यपद्धतेः ॥१२॥

अन्यत् कथय।

विश्वकद्रुः : क्वचिदपि कथने करणे नैकरूपता दृश्यते देशे। पत्रकारा अपि यल्लिखन्ति तन्न वाञ्छन्ति। यद् वाञ्छन्ति तन्न लिखन्ति।

मूषकराजः : नात्र दोषः।

धनिनां वृत्तपत्राणि संचिन्वन्ति धनं यदि।
सम्पत्तिसञ्चयाक्षेपस्तत्र नित्यं प्रकाश्यताम् ॥ १३ ॥

विश्वकद्रु । दीर्घजीवी होवो। कुत्सित आचार की निन्दा करती हुई भी प्रजा स्वयं कुत्सित आचार में लिप्त है।

मूषकराज : ठीक ठीक।

यदि जैन लोग गाय की चर्बी के प्रेमी हो जाँय, उसी प्रकार यदि बौद्ध लोग हिंसक हो जाँय तथा सिख लोग अपने देश को बाँटने में लग जाँय तो मैं मानता हूँ कि मेरी राज्य संचालन पद्धति का यह जय (उत्कर्ष) है।

और कहो।

विश्वकद्रु : देश में कहीं भी कथनी और करनी में एकरूपता नहीं दिखाई दे रही है। पत्रकार भी जो लिखते हैं, उसे नहीं चाहते हैं तथा जो चाहते हैं उसे लिखते नहीं हैं।

मूषकराज : इसमें कोई दोष नहीं है।

धनिकों के समाचार पत्र यदि धन इकट्ठा कर रहे हैं

आपत्तिवारणार्थं चेत् शासनस्वीकृतं धनम् ।
कर्मचारिविभक्तं स्यात् मनाग्दोषो न दृश्यते ।। १४ ।।
विरोधिभ्यः समाजस्य प्राप्तं यत्प्रचुरं धनम् ।
का हानिस्तेन मोदन्ते नेतारः किंकरा यदि ।। १५ ।।

विश्वकद्रुः : श्रीमन्तः ! भवतां निर्देशात् सर्वम् अपकृतम्, पर न लब्धः पारितोषिकः ।

मूषकराजः : कथं न लब्धः ? आयोगे किं न नियुक्तः ? पर्यालोचन-कार्यं न त्वदधीनम् ? निदेशकत्वेन त्वमेव नाङ्गीकृतः ?

विश्वकद्रुः : नैतत् पर्याप्तम् । मूषकराज ! स्मर्तव्यम् आसन्नं निर्वाचनम् ।

मूषकराजः : रे दुष्ट ! मां बिभीषयसे । अलीकसारमेय ! मयैव

तो उनमें धनसञ्चयविषयक आक्षेप प्रतिदिन छपा करें । आपत्ति के निवारण के लिए शासन द्वारा स्वीकृत धन यदि कर्मचारियों में बँट जाय तो इसमें थोड़ा भी दोष नहीं है । समाज के विरोधियों से जो विशाल धन मिलता है, उससे यदि नेतागण तथा जी हजूरी करनेवाले लोग प्रसन्न होते हैं तो इससे कोई हानि तो नहीं है ।

विश्वकद्रु : श्रीमन् ! आपके निर्देश से सब बुराइयाँ फैलाई पर इनाम नहीं मिला ।

मूषकराज : क्यों नहीं पाये ? क्या आयोग में तुम नियुक्त नहीं हो ? निरीक्षण का कार्य क्या तुम्हारे अधीन नहीं है ? डाइरेक्टर के रूप में तुम लिये नहीं गये हो ?

विश्वकद्रु : यह पूरा नहीं है । मूषकराज ! स्मरण करें, चुनाव निकट है ।

मूषकराज : अरे दुष्ट ! मुझको डराता है । नकली कुत्ते ! मुझसे ही बने

निर्मितः मामेव अधिक्षिपसि । (करतलध्वनिं कुर्वन्) कः कोऽत्र भोः ! निष्कासय एनम् ।

विश्वकद्रुः : क्षमस्व भगवन् क्षमस्व । (पादयोः पतति । कर्णौ स्पृशन् उत्तिष्ठति तिष्ठति च) त्वमेव सर्वं मम देवदेव । न पुनस्तव क्रोधाग्नौ शलभीभविष्यामि । मर्षय मर्षय । (रोदिति)

(ततः प्रविशति दौवारिकः)

दौवारिकः : (कृताञ्जलिः) का आज्ञा महाराजस्य ?

मूषकराजः : किम्, पुंध्वजेन किमपि सन्दिष्टम् ?

दौवारिकः : प्रतिनिधि—सम्मेलनव्यवस्था जाता । अत्रभवद्भिः सम्भावनीयाः प्रतिनिधयः ।

मूषकराजः : स्वनियोगमशून्यं कुरु ।

(दौवारिकः प्रतिगच्छति)

हो और मुझ पर गुर्राते हो । (ताली बजाता हुआ) यहाँ कोई है ? इसको बाहर करो ।

विश्वकद्रु : क्षमा करें, भगवन्, क्षमा करें । (पैरों पर गिरता है । कानों को पकड़ कर उठता बैठता है) हे देव ! तुम्हीं मेरे सब कुछ हो । अब तुम्हारी क्रोध अग्नि में पतंगा नहीं बनूँगा । माफ करो माफ करो । (रोता है)

(तभी दौवारिक आता है)

दौवारिक : (हाथ जोड़े हुये) महाराज की क्या आज्ञा है ?

मूषकराज : क्या, पुंध्वज ने कोई सन्देश दिया ?

दौवारिक : प्रतिनिधियों के सम्मेलन की व्यवस्था हो चुकी है । आपके द्वारा प्रतिनिधि गण श्रेयः प्राप्त करें ।

मूषकराज : अपने कार्य पर लग जावो ।

(दौवारिक जाता है)

विश्वकद्रुः : (रुदन्) मर्षयतु देव !

मूषकराजः : (मन्दं मन्दं विहसन्) विश्वकद्रो ! उत्तिष्ठ । अन्येऽपि तवोत्कर्षं वाञ्छन्तः परितः परिभ्रमन्ति । भेदरूपिणी मूषकनीतिः प्रदर्शिता । मा भैषीः । त्वं मे सुहृद् । गच्छ । तथा कुरु, येन मूषकनीतिः विकासं यातु ।

विश्वकद्रुः : प्रतिजाने । (चरणौ स्पृशति)

(ततो गच्छति मूषकराजे
अपरेण पथा विश्वकद्रुरपि निष्क्रान्तः)

इति प्रथमं दृश्यम्

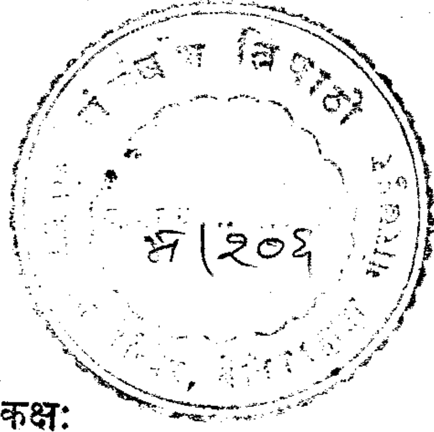
विश्वकद्रु : (रोता हुआ) देव ! क्षमा करें ।

मूषकराज : (मुसकराता हुआ) विश्वकद्रु ! उठो । तुम्हारे उत्कर्ष को चाहने वाले दूसरे लोग भी इर्द गिर्द घूम रहे हैं । यह तो भेद रूप वाली मूषकनीति का प्रदर्शन किया है । मत डरो । तुम मेरे मित्र हो । जावो । ऐसा करो जिससे मूषकनीति का विकास हो ।

विश्वकद्रु : प्रतिज्ञा करता हूँ । (चरण छूता है)

(मूषकराज के जाने पर
दूसरे मार्ग से विश्वकद्रु भी चला जाता है)

प्रथम दृश्य समाप्त



द्वितीयं दृश्यम्

स्थानम्—सम्मेलनकक्ष:

(पृथङ्मार्गेण द्वौ मूषकौ प्रविशत:)

प्रथम: : अरे ! त्वं क: ?

द्वितीय: : अरे ! त्वं क: ?

प्रथम: : न जानासि महाराजस्य मूषकराजस्य श्यालं माम् उत्कटगन्धम् ?

द्वितीय: : अरे ! किं मां न जानासि महाराजमहिष्या: गिरिकाया: श्यालं तीक्ष्णदन्तं नाम ?

उत्कटगन्ध: : अरे मूर्ख ! किं स्त्रिया अपि श्यालो भवति ?

तीक्ष्णदन्त: : कथं न भवति ? महाराजश्यालो भूत्वा महाराज्ञीश्यालं न जानासि ? किं प्रतिपादयामि ?

द्वितीय दृश्य

स्थान – सम्मेलन कक्ष

(भिन्न भिन्न मार्ग से दो मूषक आते हैं)

पहला : अरे ! तुम कौन हो ?

दूसरा : अरे ! तुम कौन हो ?

पहला : महाराज मूषकराज के साले मुझ उत्कटगन्ध को नहीं जानते हो ?

दूसरा : अरे ! क्या महाराज की पत्नी गिरिका के साले मुझ तीक्ष्णदन्त को नहीं जानते हो ?

उत्कटगन्ध : अरे मूर्ख ! क्या स्त्री का भी साला होता है ?

तीक्ष्णदन्त : क्यों नहीं होता है ? महाराज के साले होकर महारानी के साले को नहीं जानते हैं ? क्या सिद्ध करूँ ?

उत्कटगन्धः : यदि प्रतिपादयितुं न क्षमः तर्हि ते दन्तान् त्रोटयिष्यामि । येन मोदकेषु ममैवाधिकारो भवेत् ।

तीक्ष्णदन्तः : शृणु रे बालिश ! उदयनगिरः पञ्चदिनानि अधीत्य समाघ्राय च प्लेटोसिद्धान्तम् आगतः तीक्ष्णदन्तोऽहम् । प्रतिपादयामि ।

उत्कटगन्धः : प्रतिपादय । अन्यथा मे शिरस्ते लगुडं ताडयिष्यति ।

तीक्ष्णदन्तः : ब्रूहि । नरस्य स्त्री नारी' इति व्युत्पत्त्या विधवा कुमारिका वा नारी अस्ति किम् ?

उत्कटगन्धः : अरे ! तत्र नरत्वजातिविशिष्टा स्त्री नारी भवति, मूर्ख !

तीक्ष्णदन्तः : परममूर्ख ! तथैव श्यालत्वविशिष्टा स्त्री श्याली भवति । न तु श्यालस्य स्त्री श्याली । श्यालस्य भगिनी अस्ति श्याली केलिकञ्चुका । श्यालो हि नाम—कस्यचित्

उत्कटगन्ध : यदि प्रतिपादन करने में समर्थ नहीं होगे तो तुम्हारे दाँतों को तोड़ दूंगा, जिससे लड्डुओं पर मेरा ही अधिकार हो जाय ।

तीक्ष्णदन्त : सुनो मूर्ख ! उदयन की वाणी को पाँच दिन पढ़कर तथा प्लेटो के सिद्धान्त को सूंघ कर आया हुआ मैं तीक्ष्णदन्त हूँ । प्रतिपादन कर रहा हूँ ।

उत्कटगन्ध : करो प्रतिपादन । नहीं तो मेरा सिर तुम्हारी लाठी को ठोकर दे देगा ।

तीक्ष्णदन्त : बोलो । 'नर की स्त्री को नारी कहते हैं' इस व्युत्पत्ति से विधवा या कुमारी क्या नारी कही जायेगी ?

उत्कटगन्ध : अरे मूर्ख ! वहाँ नर की जाति से युक्त स्त्री को नारी कहते हैं ।

तीक्ष्णदन्त : परममूर्ख ! उसी प्रकार श्याल की जाति से युक्त स्त्री को श्याली (साली) कहते हैं, न कि श्याल की स्त्री साली कही जाती है । साले की बहिन साली कहलाती है, जो केलिकञ्चुका होती है । श्याल उसे कहते हैं जो किसी पुरुष या स्त्री का

कस्याश्चिद् । वा प्रेष्ठः । यथा पत्न्याः भ्राता पत्युः प्रेष्ठो भवति तथैव पत्युः भ्राता अपि पत्न्याः प्रेष्ठो भवति । अतः श्यालोऽस्मि ।

उत्कटगन्धः : रे श्याल ! त्वं महाराजस्य भ्राताऽसि ?

तीक्ष्णदन्तः : यथा त्वं प्रेष्ठः, अतः श्यालः तथाऽहमपि प्रेष्ठः । अतः श्यालः ।

उत्कटगन्धः : रे वावदूक ! कथं त्वं श्यालः ? किं राज्ञा कुत्रचित् नियुक्तोऽसि ?

तीक्ष्णदन्तः : रे दुष्ट ! कथमात्मानम् अभिमानगर्ते निपातयसि । त्वं सम्पत्तिसहायकः, अहं तु परिषत्सहायकोऽस्मि । अधुना अत्र ते कार्यं निष्पन्नम् । मम कार्यं प्रारभ्यते ।

उत्कटगन्धः : आ एवं किलैतत् । (आकर्ण्य तूर्यध्वनिम् - आत्मगतम्) अस्ति महाराजागमनवेला । (विलोक्य) प्रतिनिधयोऽपि

प्रिय होता है । जिस प्रकार पत्नी का भाई पति का प्यारा होता है उसी प्रकार पति का भाई पत्नी को भी प्यारा होता है । इसलिए साला हूँ ।

उत्कटगन्ध : अरे साले ! तुम महाराज के भाई हो ?

तीक्ष्णदन्त : जैसे तुम प्यारे हो, इसलिए साला हो वैसे मैं भी प्यारा हूँ, इसलिए साला हूँ ।

उत्कटगन्ध : अरे बवाली ! कैसे तुम साले हो ? क्या राजा के द्वारा कहीं नियुक्त हो ?

तीक्ष्णदन्त : अरे दुष्ट ! अभिमानरूपी गड्ढे में क्यों अपने को गिरा रहे हो। तुम सम्पत्तिसहायक हो। मैं तो परिषत्-सहायक हूँ। इस समय यहाँ तुम्हारा कार्य समाप्त है । मेरा कार्य प्रारम्भ होगा ।

उत्कटगन्ध : अच्छा, यह ऐसी बात है। (बिगुल की ध्वनि सुनकर आत्मगत) महाराज के आने का समय है। (देखकर)

आयान्त्येव। (प्रकाशम्) रे श्यालश्याल ! कुरु व्यवस्थाम्। भगिनीपतिरायाति। तस्मै निवेदयितुं साधयामि।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशन्ति प्रतिनिधयः। अनन्तरं महाराजश्च दौवारिकेणानुगम्यमानः प्रविशति)

(मूषकराजे सिंहासनमुपविष्टे सर्वे उपविशन्ति)

मूषकराजः : तीक्ष्णदन्त ! प्रस्तूयताम् कृत्यम्।

तीक्ष्णदन्तः : महाराज ! स्वदेशगानान्तरं तन्निवेदयामि।

मूषकराजः : त्वर्यताम्।

(ततः प्रविशन्ति गायकेन सह वादकाः)

(महाराजं नमस्कृत्य गायति गायकः)

प्रतिनिधि भी आ ही रहे हैं। (प्रकाश में) अरे साले के साले ! व्यवस्था करो। बहनोई साहब आ रहे हैं। उनसे बताने के लिए मैं भी जा रहा हूँ।

(ऐसा कह कर चला गया)

(प्रतिनिधि आने लगे। अनन्तर दौवारिक के साथ महाराज का प्रवेश होता है।)

(सिंहासन पर मूषकराज के बैठ जाने पर सभी प्रतिनिधि बैठते हैं)

मूषकराज : तीक्ष्णदन्त ! कार्य प्रारम्भ करो।

तीक्ष्णदन्त : महाराज ! स्वदेश गान के बाद उसे निवेदित करूँगा।

मूषकराज : शीघ्रता करो।

(गायकों के साथ वादकों का प्रवेश)

(महाराज को नमस्कार करके गायक गाता है)

जय जय मूषकदेश ।
अघटितघटन सुघटविघटन स्वीकृतजनतादेश ।।
परमतिकलितराज्यसञ्चालन गर्हितमुनिमतलेश
रक्षतु नो बहुवादप्रचारक हरिजनरक्षकदेश ।।१६।।

मूषकराजः : साधु साधु । तीक्ष्णदन्त ! आगामिनि समारोहे गायकोऽयम् सङ्गीतविशारदपदव्या विभूषयितव्यः ।

तीक्ष्णदन्तः : यथाज्ञापयति महाराजः । (किञ्चिद् विरम्य) जयतु महाराजः । 'पूर्वं निखिलब्रह्माण्डमूषकाधिपतिभ्यः भवद्भ्यः मूषकसिद्धान्तस्य कानिचिद् रहस्यानि प्रकाशतामायास्यन्ति । अनन्तरम् एतेषां प्रतिनिधीनां वैदुष्यं समालोचनीयम्' इति भवद्भिराज्ञप्तोऽस्मि । अत्र भवन्तः एव प्रमाणम् ।

हे मूषकदेश ! तुम्हारी जय हो, जय हो । तुम अघटित को घटाने वाले, सुघट को मिटाने वाले हो । तुमने जनता का आदेश स्वीकार कर लिया है । दूसरों की बुद्धि से राज्य का संचालन करने वाले तथा अपने मुनियों के मत के किसी भाग की भी निन्दा करनेवाले, बहुत वादों का प्रचार करनेवाले तथा बुद्धि पौरुष विहीनों की रक्षा करनेवाले देश ! हम लोगों की भी रक्षा करो ।

मूषकराज : साधु साधु ! तीक्ष्णदन्त ! आगामी समारोह में इस गायक को संगीतविशारद की पदवी से विभूषित किया जाय ।

तीक्ष्णदन्त : महाराज की जैसी आज्ञा । (कुछ रुककर) महाराज की जय हो । 'पहले सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के मूषकों के स्वामी आप मूषक-सिद्धान्त के कुछ रहस्यों को स्पष्ट करेंगे । पश्चात् इन प्रति-निधियों के पाण्डित्य की समीक्षा की जायगी' ऐसा आपने कहा था । अब आप ही प्रमाण हैं ।

मूषकराजः : साधु वत्स ! आज्ञापालकोऽसि सावधानोऽसि। नैतस्यां परिषदि कुतश्चिद् विडालागमनशङ्काप्यस्ति। तथापि नाहं विवक्षुरस्मि। शिरसि मे महती पीडा वर्तते। अतः एकस्यैब कस्यचिद् विदेशस्थप्रतिनिधेः कृतस्य प्रचारस्य परिणामं द्रक्ष्यामि।

तीक्ष्णदन्तः : यथाज्ञापयति देवः। (एकं प्रतिनिधिम् अङ्गुल्या निर्दिशन्) श्रीमन्तो हिज् एक्सेलेन्सी डा० एल० जे० महाशयाः ! निवेदयन्तु स्वोपलब्धि तमोधौतज्ञानकणेभ्यः महाराजेभ्यः।

(तत उत्तिष्ठति डा० एल० जे० महाशयः)

मूषकराजः : अरे ललजिजह्व ! कथं त्वं श्वेत इव दृश्यसे ?

अलजिजह्वः : (प्रणमन् संकोचं नाटयंश्च) महाराज ! नाहं श्वा। मूषकोऽहम्।

मूषकराज : साधु वत्स ! आज्ञापालक हो। सावधान हो। इस सभा में कहीं से विडाल के आगमन की शङ्का भी नहीं है। फिर भी मैं कुछ कहना नहीं चाहता हूँ। मेरे सिर में बड़ी पीडा है। इसलिए किसी एक, विदेश में रहने वाले प्रतिनिधि से सम्बद्ध किये गये प्रचार का परिणाम जानूंगा।

तीक्ष्णदन्त : जैसी आपकी आज्ञा देव ! (एक प्रतिनिधि की ओर अंगुलि दिखाते हुये) श्रीमान् हिज एक्सेलेन्सी डाक्टर एल० जे० महाशय ! आप अपनी उपलब्धि को अन्धकार के द्वारा प्रकाश के कणों तक को धो डालने वाले महाराज को बतायें।

(डा० एल० जे० महाशय उठते हैं)

मूषकराज : अरे ललजिजह्व ! तुम श्वेत जैसा कैसे दिखाई दे रहे हो ?

ललजिजह्व : (प्रणाम करता हुआ तथा संकोच का अभिनय करता हुआ) महाराज ! मैं श्वान नहीं हूँ। मूषक हूँ।

मूषकराजः : साधु । बुद्धिमानसि । श्वा इतः श्वेतः इति न मेऽभिप्रायः । शुभ्र इति । त्वं तु (किञ्चित् चिन्तयन्) कृष्ण आसीत् ?

ललज्जिह्वः : क्षम्यताम् महाराज ! नात्र मे दोषः । विदेशीयाः महाराजस्य आज्ञां शिरसा वहन्ति । तथापि ते कथयन्ति— पूर्वं श्वेतमूषकैः कृष्णमूषकाः पराजिताः । अधुनाऽपि एकमेव श्वेतमूषकं दृष्ट्वा गेहे कृष्णाः पलायन्ते । मूषकराजस्य आदरं कुर्वन्तोऽपि वयं नीतिश्रवणे श्वेतानामेव नयं श्रोष्यामः । 'प्रचारः करणीय एव' इति भवदाज्ञायाः उल्लङ्घनं मा भूत् इति हेतोः वाङ्मनसचिकित्सया श्वेतो जातः । अधुना तेषां विश्वस्तोप्यऽस्मि ।

मूषकराजः : (हर्षं दर्शयन्) साधु । ललज्जिह्व । साधु । स्वकार्यं

मूषकराज : साधु । बुद्धिमान् हो । मेरा अभिप्राय श्वा+इतः श्वेतः से नहीं था । शुभ्र वर्ण से था । तुम तो (कुछ सोचता हुआ) काले थे ?

ललज्जिह्व : क्षमा करें, महाराज । इसमें मेरा दोष नहीं है । विदेशी लोग महाराज की आज्ञा को स्वीकार करते हैं तथापि वे कहते हैं कि "प्राचीन काल में श्वेतमूषकों से काले मूषक पराजित हुये थे । आज भी घर में एक भी सफेद चूहा को देखकर काले चूहे भाग जाते हैं । मूषकराज का आदर करते हुये भी नीतिश्रवण में श्वेतों की ही नीति को सुनेंगे । 'प्रचार करना ही है' आपकी यह आज्ञा उल्लंघित न हो जाय इसलिए वाणी और मन की चिकित्सा से श्वेत हो गया हूँ । इस समय उनका विश्वस्त भी हो गया हूँ ।

मूषकराज : (हर्ष दिखाते हुये) साधु, ललजिजह्व ! धन्यवाद । बुद्धिमान् को अपना कार्य सिद्ध करना चाहिये । क्योंकि कार्य का नष्ट

साधयेत् धीमान् कार्यभ्रंशो हि मूर्खता। परेषां निकृष्टताम् अपि गृहीत्वा यदि स्वकार्यं सिद्ध्येत्, तर्हि न दोषः। त्वत्प्रतिवेदनं पश्चात् श्रोष्यामि। (तीक्ष्णदन्तं पश्यन्) तीक्ष्णदन्त ! अस्मिन् देशे मूषकसिद्धान्तप्रचारस्य परिणामं दिदृक्षे।

तीक्ष्णदन्तः : यथाज्ञापयति महाराजः। कं समुपस्थापयामि ?

मूषकराजः : अस्मत्प्रधानशत्रुं कृषकं द्रष्टुमिच्छामि।

तीक्ष्णदन्तः : यथाज्ञापयति महाराजः (किञ्चिद्दूरस्थं कोशगुप्तं विलोक्य) कोशगुप्त ! कृषकं प्रवेशय।

(कोशगुप्तो बहिर्गच्छति पुनः प्रविशति एकेन कृषकेण सह। कृषकः महाराजं प्रणमति।)

मूषकराजः : कोऽयं तीक्ष्णदन्त !

तीक्ष्णदन्तः : महाराज ! अयमेव कृषकः।

होना ही मूर्खता है। दूसरों की नीचता को भी ग्रहण करके यदि अपना कार्य ठीक हो जाय तो कोई दोष नहीं है। तुम्हारी रपट बाद में सुनूँगा। (तीक्ष्णदन्त को देखता हुआ) तीक्ष्णदन्त ! इस देश में किये गये मूषक सिद्धान्त के प्रचार का परिणाम देखना चाहूँगा।

तीक्ष्णदन्त : जैसी महाराज की आज्ञा। किसको उपस्थित कराऊँ।

मूषकराज : अपने प्रधान शत्रु कृषक को देखना चाहता हूँ।

तीक्ष्णदन्त : जैसी महाराज की आज्ञा। (कुछ दूर पर स्थित कोशगुप्त को देखकर) कोशगुप्त ! कृषक को भेजो।

(कोशगुप्त बाहर जाता है तथा एक कृषक के साथ पुनः आता है ? कृषक महाराज को प्रणाम करता है।)

मूषकराज : तीक्ष्णदन्त ! यह कौन है ?

तीक्ष्णदन्त : महाराज ! यही कृषक है।

मूषकराजः : अवस्था चास्य का ?

तीक्ष्णदन्तः : (मनसि) अवस्था ! (प्रकाशम्)

ऋणं विकासाय कृषेर्गृहीतं,
विक्रीय भूमिं तदृणं निरस्तम्।
स्वोत्पाद्यमूल्यं परिलभ्य चाल्पं,
नतेन मूर्ध्ना कृषकेण जीव्यते ।।१७।।

मूषकराजः : वर्द्धन्ताम् अस्मत्कृषिसिद्धान्तप्रचारकाः, यैरयम् इमां दशां नीतः (विरम्य) अपसारय एनम्। एतेषां यो व्यवस्थां करोति तमधिकारिणं दिदृक्षे।

तीक्ष्णदन्तः : कोशगुप्त ! कञ्चित् अधिकारि-प्रवरं प्रवेशय।

[ततः प्रविशति धृताङ्ग्लवेशः मुखसन्निविष्टचुरुटः कृतकुक्षिलघुदण्डः अधिकारी]

मूषकराजः : तीक्ष्णदन्त ! त्वत्तोऽपि तीक्ष्णः कोऽयम् ?

मूषकराज : इसकी अवस्था क्या है ?

तीक्ष्णदन्त : (मन में) अवस्था (प्रकाश में)

इसने कृषि के विकास के लिए ऋण लिया और भूमि को ही बेचकर ऋण चुकाया। अपने से उत्पादित वस्तुओं का स्वल्प मूल्य पाकर सिर झुकाये हुये यह कृषक जी रहा है।

मूषकराज : हमारे कृषि सिद्धान्त के प्रचारक उन्नत हों, जिनके द्वारा यह इस दशा को पहुँचा दिया गया है। (रुक कर) हटाओ इसे। जो इनकी व्यवस्था करता है, उस अधिकारी को देखना चाहता हूँ।

तीक्ष्णदन्त : कोशगुप्त ! किसी श्रेष्ठ अधिकारी को भेजो।

[आङ्ग्लवेशधारी मुख में चुरुट दबाये काँख में रूल लिये एक अधिकारी का प्रवेश]

मूषकराज : तीक्ष्णदन्त ! तुमसे भी तीक्ष्ण यह कौन है ?

तीक्ष्णदन्तः : महाराज ! अयं सर्वोच्चो—धिकारी ।

मूषकराजः : कोऽस्य परिचयः ? कश्चास्य सिद्धान्तः ? किं मूषकसिद्धान्तं स्वीकरोति अयम् ?

तीक्ष्णदन्तः : आम् श्रीमन् ! अतएव शासनेन अस्य जनसेवकविरुदम् अपहृत्य शासनसेवक इति नवा संज्ञा दत्ता । अस्य (किञ्चिद् विरमति)

मूषकराजः : शीघ्रं कथय ।

तीक्ष्णदन्तः : अस्य नैसर्गिकी मान्यता अस्ति—

योग्यत्वं ननु यस्य जन्मसमयाद् धात्रा प्रमाणीकृतम्,
कार्यं यस्य भवेत्कदाचिदपि नालोच्यं क्वचित् केनचित् ।
मानं तस्य विधेयमेव मनुजैरित्थं च जानाति यः
आई. ए. यस. नामिकां सुपदवीं बिभ्रन्नसौ राजते ।१८।

तीक्ष्णदन्त : महाराज ! यह सर्वोच्च अधिकारी है ।

मूषकराज : इसका परिचय ? इसका सिद्धान्त ? क्या यह मूषकसिद्धान्त को मानता है ?

तीक्ष्णदन्त : हाँ श्रीमन् ! इसीलिए शासन ने इसके जनसेवक (**Civil Servant**) उपाधि को हटाकर शासनसेवक (**Administrative Servant**) यह नई संज्ञा दे दी है । इसकी (कुछ रुकता है)

मूषकराज : शीघ्र कहो ।

तीक्ष्णदन्त : इसकी स्वभावगत मान्यता है—

जिसकी योग्यता को जन्मकाल से ही ब्रह्मा ने प्रमाणित कर दिया है, जिसके कार्य की आलोचना कहीं भी, कभी भी किसी के द्वारा भी नहीं होनी चाहिये और जो यह मानता है कि सभी मनुष्यों को उसका मान करना ही चाहिये वह आई. ए. एस. पदवी धारण करने वाला यहाँ सुशोभित हो रहा है ।

मूषकराजः : साधु । किमस्य देशे आंग्लभाषा राष्ट्रभाषा ? यस्मादयं तदुपयुक्तां पदवीं धारयति ?

तीक्ष्णदन्तः : मैवं श्रीमन् ! पूर्वं श्वेतैर्मूषकैः शासितोऽस्य देशः । तामेव सरणिम् अद्यापि अङ्गीकरोति अस्य देशः । अनेन मूषक-सिद्धान्तप्रचारे सौकर्यं भवति ।

मूषकराजः : एवं तर्हि चिरं वर्द्धताम् आंग्लभाषा, या सर्वान् मूषकीकरोति । (विरम्य) अपरं कञ्चिद् आरक्षिणं दिदृक्षे, यत्साहाय्येन मूषकाः सुरक्षिताः ।

तीक्ष्णदन्तः : कोशगुप्त ! आरक्षिणं प्रवेशय ।

(ततः प्रविशति आरक्षी)

मूषकराजः : तीक्ष्णदन्त ! कोऽयम् ?

तीक्ष्णदन्तः : अयं पुलिशः ।

मूषकराज : साधु ! इसके देश में राष्ट्रभाषा क्या आंग्ल भाषा है ? जिससे यह उस भाषा की पदवी धारण करता है ?

तीक्ष्णदन्त : ऐसा नहीं है श्रीमन् ! पहले सफेद मूषकों के द्वारा इसका देश शासित था । आज भी उसी पद्धति को इसका देश स्वीकार करता है । मूषक सिद्धान्त के प्रचार में इससे सहायता प्राप्त होती है ।

मूषकराज : ऐसी बात है, तब तो आँग्ल भाषा सदा उन्नति शील रहे क्योंकि वह सब को मूषक बना रही है । (कुछ रुककर) अब किसी आरक्षी को देखना चाहता हूँ, जिसकी सहायता से मूषक सुरक्षित होते हैं ।

तीक्ष्णदन्त : कोशगुप्त ! आरक्षी को बुलाओ ।

[आरक्षी आता है]

मूषकराज : तीक्ष्णदन्त ! यह कौन है ?

तीक्ष्णदन्त : यह पूलिश है ।

मूषकराजः : फूलिशः किम् ?

तीक्ष्णदन्तः : नहि श्रीमन् ! पुलिस इति। आरक्षिकृते अयम् आङ्गलशब्दः।

मूषकराजः : आम्। अयं कथं विचारयति ?

तीक्ष्णदन्तः : अस्य देशस्य नेतारः स्वातन्त्र्यसंग्रामकाले एतानुन्मूलयितुं कृतप्रतिज्ञा आसन्। परन्तु तयैव पद्धत्या एते अद्यापि जीवन्ति। अतः एते कथयन्ति—

मूषकराजः : किम् ?

तीक्ष्णदन्तः : नेतारः कृतनिश्चयाः प्रवयसः स्वातन्त्र्ययुद्धे पुराऽ
स्मानुन्मूलयितुं, गता विफलतां, भग्नं न रोमाऽपि नः।
निन्दन्तोऽपि जना भृशं विवशतो रक्षार्थमायान्ति नो
गोपायेम दधीमहि स्वविरतिं वाऽऽरक्षिणः स्मो वयम्।१९।

मूषकराज : फूलिश क्या कहलाता है ?

तीक्ष्णदन्त : श्रीमन् ! ऐसा नहीं। पुलिस। आरक्षी के लिए यह अंग्रेजी शब्द है।

मूषकराज : अच्छा। यह किस प्रकार से सोचता है ?

तीक्ष्णदन्त : इसके देश के नेता स्वतन्त्रता संग्राम के समय इन्हें हटाने के लिए प्रतिज्ञा कर चुके थे। पर ये आज भी उसी पद्धति से चल रहे हैं। इसलिए ये कहते हैं—

मूषकराज : क्या ?

तीक्ष्णदन्त : पहले स्वतन्त्रता युद्ध में परिपक्व नेता लोग हमें हटाने के लिए वचनबद्ध थे पर वे विफल हो गये और हम लोगों का एक रोम भी नहीं टूटा। प्रजा हमारी निन्दा करते हुये भी रक्षा के लिए हमारे पास आती है। हम चाहे उसकी रक्षा करें या उससे विरक्त हो जाँय, आरक्षी तो हम ही हैं।

मूषकराजः : साधु। अनेनैव विचारेण अबला अपि नारी प्रबला साहसिका भविष्यति। (तीक्ष्णदन्तं पश्यन्) तीक्ष्णदन्त ! एतान् विवर्णमुखमण्डलान् परन्तु अन्तरुत्साहभरितान् अवलोक्य प्रतीयते—यदस्य देशे न राज्यतन्त्रम्। नेतारो भवेयुः।

तीक्ष्णदन्तः : एवमेव भगवन्।

मूषकराजः : तर्हि तेषामन्यतमम् आकारय।

तीक्ष्णदन्तः : कोशगुप्त ! उपस्थापय कञ्चिन्नेतारम्।

(ततः प्रविशति धृतधौतखादीवस्त्रः कश्चिद् युवा नेता)

तीक्ष्णदन्तः : अयम् अपि नेता पुरतः स्थितः महाराज !

मूषकराजः : अभिनेता कथमानीतः ?

तीक्ष्णदन्तः : नायम् अभिनेता। अयं तु......

मूषकराज : बहुत ठीक। इस विचार से तो निर्बल स्त्रियाँ भी प्रबल डाकू बनेंगी। (तीक्ष्णदन्त की ओर देखता हुआ) तीक्ष्णदन्त ! बाहर से मलिनमुखवाले पर अन्दर से उत्साहयुक्त इन सबों को देखकर ऐसा लगता है कि इनके देश में राज्यतन्त्र नहीं है। नेता लोग हो सकते हैं।

तीक्ष्णदन्त : ऐसा ही है, भगवन् !

मूषकराज : तो उनमें से किसी को बुलाओ।

तीक्ष्णदन्त : कोशगुप्त ! किसी नेता को लाओ।

(धुली हुई खादी पहने किसी युवा नेता का प्रवेश)

तीक्ष्णदन्त : यह नेता भी सामने उपस्थित है महाराज !

मूषकराज : अभिनेता क्यों लाया गया ?

तीक्ष्णदन्त : यह अभिनेता नहीं है। यह तो...........

विद्या नाधिगता पुराणलिखिता सेवा कृता नो गुरोः
बाल्यत्वं च न लङ्घितं परमहो प्राप्तानुभूतिः परा।
कार्याकार्यविचारणैकविषये नीतिर्व्यवस्थाप्यते
येनैवं स विशेषबुद्धिभरितो नेता पुरः राजते ॥२०॥

मूषकराजः : साधु। तीक्ष्णदन्त ! कृषका अधिकारिणः आरक्षिणः नेतारो वा सर्वे वृत्तपत्राणि पठन्ति। यदि वृत्तपत्रैः वस्तुतः शासनं समालोच्यते तर्हि सर्वे व्यवस्थिता भविष्यन्ति। पत्रकारम् आनय।

तीक्ष्णदन्तः : (कोशगुप्तं संज्ञापयन्) आयात्येव महाराज।

(ततः प्रविशति सोपनेत्रो हस्तधृतवृत्तपत्रः पत्रकारः)

अयमागतः पत्रकारः।

मूषकराजः : अयं कथं व्यवहरति ? अस्य कः सिद्धान्तः ?

जिसने पुराणलिखित विद्या नहीं पढ़ी, न तो गुरु की सेवा ही की, न ही बचपना को पार किया पर अपरोक्ष अनुभूति की प्राप्ति कर ली है तथा जिसके द्वारा कर्त्तव्य एवम् अकर्त्तव्य की विचारणा से युक्त विषय में नीति का निर्धारण किया जाता है वह विशेष बुद्धि से युक्त नेता आपके सामने सुशोभित हो रहा है।

मूषकराज : साधु। तीक्ष्णदन्त ! कृषक, वधिकारी, आरक्षी तथा नेता सभी समाचार पत्र पढ़ते हैं। यदि वृत्तपत्र शासन की सही आलोचना करें तो सभी व्यवस्थित हो सकते हैं। पत्रकार को उपस्थित करो।

तीक्ष्णदन्त : (कोशगुप्त को संकेत देता हुआ) आ ही रहा है, महाराज !

(हाथ में समाचारपत्र लिये चश्मा चढ़ाये पत्रकार का प्रवेश)

यह पत्रकार आ गया।

मूषकराज : यह कैसा व्यवहार करता है ? इसका सिद्धान्त क्या है ?

तीक्ष्णदन्तः : अयम् ? अस्य ?

न जानाति भावं विधाता कदाचित्
कदा लेखनी कस्य तुष्ट्याऽप्रतुष्ट्यै ।
प्रवृत्ता भवेदस्य सिद्धान्तहीना
वचोभिर्जनान् भ्रामयन् पत्रकारः ॥ २१ ॥

मूषकराजः : साधु, पत्रकार ! साधु । प्रतिगृहं प्रतिकार्यालयं पर्यटन्, इतस्ततः वृत्तं कर्तयन्, अदृष्टचरमपि स्वस्वामिनं बहु मानयन् त्वमेव वस्तुतः आखुप्रतिनिधिः । क्षणं पलायनम् क्षणम् उपस्थितिः, क्षणं कूर्दनम्, क्षणं व्यवस्थितिः । साधु । (तीक्ष्णदन्तं पश्यन्) तीक्ष्णदन्त ! विवादे समुपस्थिते अस्य देशस्य न्यायाधिकारी कथं वर्तते ?

तीक्ष्णदन्तः : महाराज ! स्वयमेव निभालयतु ।

तीक्ष्णदन्त : यह ? इसका ?

इसके भाव को तो ब्रह्मा भी नहीं जानते हैं। इसकी सिद्धान्त-हीन लेखनी कब किसकी प्रसन्नता या अप्रसन्नता के लिए चल देगी (कौन जानता है) । यह अपने वचनों से जनता को भ्रान्त करता हुआ पत्रकार है ।

मूषकराज : वाह पत्रकार ! वाह । प्रत्येक घर और कार्यालय में घूमते हुये, इधर उधर से समाचार कुतरते हुये, कभी न देखे गये अपने स्वामी को बहुत मानते हुये, तुम ही वस्तुतः मूषकों के प्रति-निधि हो । वाह ! (तीक्ष्णदन्त की ओर देखता हुआ) तीक्ष्ण-दन्त ! विवाद उपस्थित होने पर इस देश के न्यायाधिकारी कैसा बर्ताव करते हैं ?

तीक्ष्णदन्त : महाराज ! अपने ही देख लें ।

(कोशगुप्तं संज्ञापयति । ततः प्रविशति न्यायाधिकारी)
महाराज ! समागतो जजः ।

मूषकराजः : किम् ? अजाग्रजो जजः ? अजस्तु वलिप्रयोजनः ।

तीक्ष्णदन्तः : जजोऽपि वलिप्रयोजनः । कार्यपालकं तोषयन् अयं न्यायपालकः परस्परं मातृष्वषेयः । द्वित्रा एव अप्रसन्नतां प्रकटयन्तः पलायमाना वलिकर्मणि अप्रयुक्ता भवन्ति ।

मूषकराजः : तीक्ष्णदन्त ! इदन्तु नोचितम् । किमयं लघुतां नीतः ?

तीक्ष्णदन्तः : मैवं श्रीमन् ! अपवादं परित्यज्य अधुनाप्ययं भवन्नीतिमनुसरन् तुष्ट एव ।
कालातीतो न वादः समुचितविधिना निश्चितो वादविन्दुः
साक्ष्यं सम्यक्प्रदत्तं प्रतिनिधिभिरलं स्थापितो वादपक्षः ।

(कोशगुप्त को संकेत देता है । न्यायाधिकारी का प्रवेश)
महाराज ! जज आ गये ।

मूषकराज : क्या ! अज (बकरे) का बड़ा भाई, जज ? अज तो बलि के लिए होता है ।

तीक्ष्णदन्त : जज भी बलि के लिए होता है । कार्यपालक को तुष्ट रखता यह न्यायपालक परस्पर में मौसेरे भाई हैं । दो या तीन ही अप्रसन्नता दिखाते हुये भाग जाते हैं जो बलि के काम में नहीं लग पाते हैं ।

मूषकराज : तीक्ष्णदन्त ! यह तो ठीक नहीं है । क्या यह छोटा बन गया है ?

तीक्ष्णदन्त : नहीं श्रीमन् ! अपवाद को छोड़कर आज भी यह आपकी नीति के अनुसार तुष्ट ही है ।
'दावा समय से हुआ है । तनकीह भी ठीक तरह से बनी है । गवाही भी अच्छे ढंग से हुई है तथा वकीलों ने बहस भी ठीक से किया है । मगर इससे क्या रिजल्ट निकलेगा अगर मेरी

किन्त्वेभिः किं फलं स्याद् यदि न मम मतिः प्रेर्यतेऽ
न्यैरुपायैः
इत्थं बाढं प्रजल्पन् जजपदविदितो नूतनोऽयं कृतान्तः ।२२।

(ततः प्रविशति चिकित्सकः)

मूषकराजः : कोऽयमनाहूतः प्रविशति ? किमयं गदहा ?

तीक्ष्णदन्तः : अयं चिकित्सकः परन्तु वैद्यो न । डाक्टरोऽयम् । अयं गदं न हन्ति । स्वीयम् अर्थकाठिन्यं द्राक्तरति । अस्य परिचयस्तु लोके प्रहेलिकारूपेण प्रसिद्धा अस्ति ।

मूषकराजः : (विस्फारितनेत्रः) कथं प्रहेलिका ? कथय ताम् ।

तीक्ष्णदन्तः : प्रणम्यो जगत्यां क आत्मीय बुद्धया,
समं चायुषा कोऽस्ति वित्तस्य हर्ता ।
द्रुतं कस्य चित्तं क्वचिन्नार्तनादैः ? इति प्रहेलिका ।
उत्तरं त्वस्य—
अयं डाक्टरः कोऽपि नान्यो मनुष्यः ॥२३॥

बुद्धि किसी दूसरे उपायों से प्रेरित नहीं की जाती है' ऐसा दृढता से कहने वाला यह जज नाम वाला नया यमराज है ।

(उसी समय चिकित्सक आता है)

मूषकराज : बिना बुलाये यह कौन आ रहा है ? क्या यह गदहा है ?

तीक्ष्णदन्त : यह चिकित्सक है परन्तु वैद्य नहीं है । यह डाक्टर है । यह रोग को नहीं नष्ट करता है । अपने धन की कमी को शीघ्र दूर करता है । इसका परिचय लोक में पहेली के रूप में प्रसिद्ध है ।

मूषकराज : (आँखें फाड़ता हुआ) कैसी पहेली ? उसे कहो ।

तीक्ष्णदन्त : इस संसार में आत्मीय बुद्धि से कौन प्रणम्य है ? आयु के साथ धन का अपहरण कौन करता है ? तथा आर्तनाद से किसका चित्त पिघलता नहीं है ? यह पहेली है ।
इसका उत्तर है—यह डाक्टर है । कोई दूसरा मनुष्य नहीं है ।

अशुद्धि शोधन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धरूप
८	१५	होते भी	होते हुये भी
१०	२	बहेत्	वहेत्
१३	२०	Roand	Round
१८	९	बङ्गा	वङ्गा
३३	१	कस्याश्विद् ।	कस्याश्चिद्
३६	४	एकस्यैब	एकस्यैव
३७	४	म दोषः	मे दोषः
४१	६	बर्द्धताम्	वर्द्धताम्
४४	१९	वधिकारी	अधिकारी
४५	१२	निमालयतु	निभालयतु
४६	५	मातृष्वषेयः	मातृष्वसेयः
४८	२२	महराराज	महाराज
४९	२५	वालों	वाले
५२	२४	उसके	उनके
५३	१०	गृह्लन्	गृह्णन्
५६	७	परिपालने	प्रतिपालने

(द्विः पठति)

मूषकराजः : साधु डाक्टर ! साधु । मूषका अपि केवलं धनं हरन्ति । त्वं तु प्राणानपि । (तीक्ष्णदन्तं पश्यन्) अत्र कथमभियन्तारः ?

तीक्ष्णदन्तः : (आगच्छन्तम् अभियन्तारं पश्यन्) महाराज ! स्वयमेव अवलोकयतु । स तु स्वयं जिघ्रन् आगच्छति । (अङ्गुल्या निर्दिशति)

(ततः प्रविशति अभियन्ता)

महाराज ! पश्यतु

प्राक् प्रारूपं पश्चाद् द्रव्यं किञ्चित् किञ्चित् तन्निर्माणं,
जातो भ्रंशो भूयो द्रव्यं जल्पन् गृह्णन् वित्तं नाल्पम् ।
जे. ई., ए. ई., ई. ई., सी, ई. रूपैर्लोके भ्राम्यन्नित्यम्,
देशद्रव्यं मत्वा रिक्थं कार्ये लग्नो यन्ता चायम् ॥२४॥

(श्लोक को दो बार पढ़ता है)

मूषकराज : शाबास डाक्टर ! शाबास । मूषक भी केवल धन का हरण करते हैं । तुम तो प्राणों का भी । (तीक्ष्णदन्त को देखता हुआ) यहाँ इन्जीनियर कैसे हैं ?

तीक्ष्णदन्त : (आते हुए इन्जीनियर को देखकर) महाराज ! स्वयं देखें । वह तो स्वयं सूंघता हुआ आ रहा है । (अङ्गुलि से निर्देश करता है) ।

(अभियन्ता का प्रवेश)

महराराज देखें—

पहले प्रारूप, फिर द्रव्य, फिर कुछ कुछ निर्माण, पुनः निर्माणध्वंस, पश्चात् द्रव्य यही कहता हुआ प्रभूत वित्त लेता हुआ यह यन्ता जे० ई०, ए० ई०, ई० ई० तथा सी० ई० रूप से नित्य भ्रमण करता हुआ देश के द्रव्य को पैतृक सम्पत्ति मानकर कार्य में लगा है ।

मूषकराजः : तीक्ष्णदन्त ! श्रान्तोऽस्मि । अल्पश्रमेण अश्रमेण वा धनाकांक्षिणो दर्शं दर्शं तुष्टोऽस्मि । केवलं शिक्षकं द्रष्टुमिच्छामि । मन्ये, यदि स श्रमशीलः, तदा मूषकसिद्धान्तो व्यर्थतामेष्यति, इयं मे शङ्का ।

तीक्ष्णदन्तः : कोशगुप्त ! 'श्रान्तो महाराजः' इति एकम् एव कमप्यद्भुतं, कदाचित्-सन्दर्भ-कर्तनावाप्त-दन्तनैपुण्यम्, अनभ्यासतमस्काण्ड-मलीमसम्, अस्मद्गणाध्यक्षमिव लब्धाध्यक्ष्यम्, सर्वसहात्मजान्वेषणतत्परं वानरेन्द्रमिव लङ्घितदुःस्तरसारस्वतसीमानं, कर्तारमाश्चर्याणां हर्तारमन्तेवासिमेधसां, शिक्षकमूर्धन्यम् उपस्थापय द्राक्तरम् ।

मूषकराज : तीक्ष्णदन्त ! थक गया हूँ । कम श्रम से या बिना श्रम के धन चाहने वालों को देख देखकर संतुष्ट हूँ । केवल शिक्षक को देखना चाहता हूँ । मानता हूँ कि यदि वह श्रमशील है तो मूषक सिद्धान्त व्यर्थ हो जायगा । ऐसी मेरी शङ्का है ।

तीक्ष्णदन्त : कोशगुप्त ! महाराज थक गये हैं, इसलिए किसी एक अद्भुत शिक्षक मूर्धन्य को शीघ्रातिशीघ्र उपस्थित करो जो किसी समय में ग्रन्थो के उद्धरण कुतर कर दाँतों की निपुणता दिखा चुका हो, अभ्यास के अभाव रूपी अन्धकार समूह से स्वयं मलिन हो चुका हो, हमारे गणाध्यक्ष (गणेश जी) की अध्यक्षता की तरह अध्यक्षता पा चुका हो, सब कुछ सहने वाली पृथ्वी की पुत्री (सीता) के अन्वेषण में लगे वानर श्रेष्ठ (हनूमान्) की भाँति पार करने में कठिन सारस्वत (समुद्र या विद्या) की सीमा को लाँघ गया हो, आश्चर्यों का करने वाला हो तथा पास में रहने वालों छात्रों की बुद्धि का विनाशक हो ।

(ततः प्रविशति शिक्षकः)

मूषकराजः : तीक्ष्णदन्त ! कोऽयं पञ्चजनः ?

तीक्ष्णदन्तः : भगवन् ! शिक्षकः । अयन्तु.........

अधीत्य सर्गौ नु किरातमाघयोः
प्रबन्धमेकं विरचय्य हेलया ।
प्रदर्श्य तूष्णीमपि पाठकर्मणि,
महाजनोऽध्यक्षपदं सुशोभते ॥२५॥

मूषकराजः : (प्रसन्नतां प्रदर्शयन्) साधु वत्स ! साधु । भृशं प्रीतोऽस्मि अस्य दर्शनात् । लब्धं साफल्यं मूषकवैदुष्येण । अयमेव अस्मत्सिद्धान्तरक्षकः । मूषकनैरुक्ता एनं वस्तुतः महाजनं स्वीकुर्वते ' पश्य—मं महत्त्वं विदुषां हन्ति इति महा जं जडतां छात्रेषु नयति इति जनः । महा चासौ जनश्च

[शिक्षक प्रविष्ट होता है]

मूषकराज : तीक्ष्णदन्त ! यह कौन सा पञ्चजन (पुरुष है) ?

तीक्ष्णदन्त : भगवन् ! यह शिक्षक है । यह तो...........

किरात और माघ के एक एक सर्गों को पढ़कर, एक शोध प्रबन्ध को बड़ी सरलता से लिखकर, अध्यापन में चुप्पी दिखाकर यह महाजन अध्यक्ष के पद को सुशोभित कर रहा है ।

मूषकराज : (प्रसन्नता दिखाते हुये) बहुत सुन्दर प्यारे ! बहुत सुन्दर । एकदम प्रसन्न हूँ । मूषकों के पाण्डित्य ने सफलता पा ली । यह ही हमारे सिद्धान्तों का रक्षक है । मूषक निरुक्त जानने वाले इसको वस्तुतः महाजन कहते हैं । देखो—म का अर्थ महत्त्व अर्थात् विद्वानों के महत्त्व को जो हनन करे वह महा, ज का अर्थ जडता अर्थात् छात्रों में जो जडता आरोपित करे वह जन । महा चासौ जनः इस विग्रह से महाजन बना । इस

महाजनः। जीवति एतादृशि महाशिक्षके चिरं वर्द्धिष्यते मूषकवैखरी। नास्य समता लोके। अतुलोऽयम्।

तीक्ष्णदन्त! अप्राप्तमाध्यमिकशिक्षस्त्वम् तथापि तुष्टोऽहमन्तश्चेतसा सामान्यमूषकादेय-दलित (DLITT) पदव्या त्वां सभाजयामि। गृहाण। (वस्त्रादिभिः सह प्रमाणपत्रं ददाति)

(तीक्ष्णदन्तः हस्तौ प्रसार्य वस्त्रादिभिः सह प्रमाणपत्रं गृह्णाति। उत्सुकनेत्रः सन् महाराजं प्रतिनिधींश्च विलोकयति)

किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि।

तीक्ष्णदन्तः : सर्वं सम्पन्नम् आर्य! तथापि इदमस्तु अस्मदतिवृद्धप्रपितामहगोष्ठीगरिष्ठस्य रङ्गाचार्यस्य वाक्यम्—

प्रकार के महाशिक्षक के रहते मूषकों की वाणी चिरकाल के लिए बढ़ेगी। इस लोक में इसकी समता नहीं है। यह तुलाविहीन है।

तीक्ष्णदन्त! तुमने माध्यमिक शिक्षा भी नहीं पाई है। फिर भी अपने अन्तःकरण से तुष्ट होकर साधारण मूषकों को अदेय दलित की उपाधि से तुम्हें विभूषित कर रहा हूँ। स्वीकार करो। (वस्त्र आदि के साथ प्रमाणपत्र देता है)।

(तीक्ष्णदन्त हाथ फैलाकर वस्त्र आदि के साथ प्रमाणपत्र लेता है तथा उत्फुल्ल नेत्र होकर महाराज और प्रतिनिधियों को देखता है)

फिर बताओ, तुम्हारा क्या प्रिय करूँ

तीक्ष्णदन्त : सब सम्पन्न है, आर्य! फिर भी हम लोगों के अतिवृद्धप्रपितामह की गोष्ठी के प्रमुख रङ्गाचार्य का यह वाक्य परिपूर्ण हो—

प्रजाहिते दत्तवचांसि भङ्क्त्वा,
धनग्रहः स्यान् नियमान् विधाय ।
विजृम्भतामाखुनयो धरित्र्याम्
.........॥२६॥

(इत्यर्द्धोक्ते एव साशङ्कं पश्यति)
किं शब्द इव श्रूयते ? आयाति कश्चिद् विडालः ?

कोशगुप्तः : (बहिर्विलोक्य ससम्भ्रमम्) अये ! ज्वलदर्कसन्निभः, गृहीतत्रिशूलः, भस्मच्छन्नशरीरः, कश्चिद् अपरशङ्कर इव बालकेनैकेन अनुगम्यमानः इत आगच्छति ।

मूषकराजः : (कृतत्वर इव) अपरशङ्कर इव ? तर्हि पलायध्वम् । तत्सुतकृपयैव वयं जीवामः । कदाचित् स न क्रुध्येत् । तदर्थं यतनीयम् । सिद्धान्तप्रचारः भवतु वा न भवतु । पलायने को दोषः । अन्ततस्तु वयं मूषका एव । गृहीत

प्रजा के हित में पुराने दिये गये वचनों को तोड़कर कानून बनाकर धन का ग्रहण हुआ करे । इस पृथ्वी पर मूषकों की नीति विजयिनी.........

(आधा ही कहे जाने पर आशङ्का के साथ देखता है)

क्या शब्द के समान सुनाई पड़ रहा है । क्या कोई विडाल आ रहा है ?

कोशगुप्त : (बाहर देखकर सम्भ्रम के साथ) अरे । प्रकाशमान सूर्य के समान, त्रिशूल लिये हुए, शरीर में भस्म लगाये, दूसरे शङ्कर के समान कोई व्यक्ति एक बालक के साथ इधर आ रहे हैं ।

मूषकराज : (शीघ्रता करता हुआ सा) दूसरे शङ्कर के समान ? तो तुम सभी भगो । उसके सुत की कृपा से ही हमलोग जी रहे हैं । कहीं वह न क्रुद्ध हो जाँय । उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए । सिद्धान्त का प्रचार हो या न हो । भागने में क्या दोष है ।

मोदकभाण्डाः पलायध्वम्। पलायध्वम्। (सर्वे पलायन्ते)।

(ततः प्रविशति कश्चित् तपस्वी बालकेन एकेन अनुगम्यमानः)

तपस्वी : किशोर ! इदं किमस्ति ?

किशोरः : भगवन् ! स्थलदर्शनात् प्रतीयते यत्, मूषकैः क्रियमाणे कस्मिश्चिद् अभिनये भरतवाक्यं न पूर्णम्। शारदायै निवेदनाय प्रयोज्येयं स्रक् स्वस्थाने एव स्थिताऽस्ति।

तपस्वी : तर्हि तामानय।

(आनीतां स्रजं गृह्णन्)

भूयस्त्वं वद। किं ते प्रियमुपकरोमि ?

किशोरः : आर्य ! त्वयि जाग्रति किमपि नाप्रियम्। तथापि इदमस्तु भरतवाक्यम्—

आखिरकार हम मूषक ही तो हैं। लड्डूओं का बर्तन लेकर भागो, भागो। (सभी भाग जाते हैं)

(एक बालक को साथ लिये किसी तपस्वी का प्रवेश होता है।)

तपस्वी : किशोर ! यह क्या है ?

किशोर : भगवन् ! इस स्थल को देखने से पता चलता है कि मूषकों के द्वारा किये जा रहे किसी अभिनय में भरतवाक्य पूर्ण नहीं हो पाया है। शारदा के निवेदन के लिये प्रयुक्त होने वाली माला अपने स्थान पर ही रखी हुई है।

तपस्वी : तो उसे लाओ।

(लाई हुई माला को लेकर)

अब पुनः तुम बताओ। तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ?

किशोर : आर्य ! आपके रहते मेरा अप्रिय कुछ भी नहीं है। तथापि यह भरतवाक्य पूर्ण हो—

स्वीयानां प्रतिपालने विजयतां वृत्तिर्गवां मोददा
संग्रामे प्रतिपक्षिभिर्विजयतां वृत्तिर्वृकाणां सदा ।
चाणक्यस्य नयो ध्रुवं विजयतां ज्ञानं भवेत् पाणिनेः
वृत्तिर्माऽस्तु च भारते क्वचिदपि श्वानाखुवालेयगा ।२७।

तपस्वी : (स्रजं शारदायै समर्पयन्) तथास्तु ।

(उभौ मन्दं मन्दं गच्छतः)
(नेपथ्ये गानं भवति)

यस्याङ्घ्रिसेवनमहो निजजन्मसारं
लङ्कापतिर्दशमुखो नितराममंस्त ।
यस्यास्ति गाङ्गजलपूर्णजटा हिमाद्रिः
देवः स भारतवपुर्जयताद् गिरीशः ॥ २८ ॥

शुभमस्तु

अपने लोगों के पालन में गायों की आनन्द देने वाली वृत्ति विजयिनी हो तथा प्रतिपक्षियों से युद्ध में वृकों की वृत्ति विजयिनी हो । चाणक्य की नीति की जय हो तथा पाणिनि के ज्ञान का विकास हो । पर इस भारत में कुत्तों, चूहों तथा गदहों की वृत्ति कभी न हो ।

तपस्वी : (शारदा के लिए माला अर्पित करते हुये) ऐसा ही हो ।

(दोनों धीरे-धीरे जाते हैं)
(नेपथ्य में गान होता है)

लङ्काधिपति दशग्रीव जिसके चरणों की सेवा को पूर्णतया अपने जन्म का फल मानता था, यह हिमाद्रि ही गंगा के जल से परिपूर्ण होकर जिसकी जटा बनता है वह भारत रूप भगवान् गिरीश्वर विजयी हों । शुभ हो

जमुईपण्डितग्रामे गोरखपुरमण्डले
वसतो ग्रन्थकर्तुः स्याद् ग्रन्थोऽयं बुधहर्षदः ।

●

श्लोकानुक्रमणी